अनुक्रमणिका.

मंगळाचरण.

आदौ नेमिजिनंस्तौमि, संभवं सुविधि तथा ॥ धर्मनाथं महादेवं, शांति शांति करं सदा ॥ १ ॥ अनंतं सुव्रतं भक्त्या, नमीनाथं जिनोत्तमं ॥ अजितं जीतकं दर्प्पं, चंद्र चंद्र समप्रभं ॥ २ ॥ आदिनाथं तथा देवं, सुपार्श्वं विमलं जिनं ॥ मल्लिनाथं गुणोपेतं, धनुषां पंच विंशति ॥ ३ ॥ अरनाथं महावीरं, सुमतिंच जगद्गुरु ॥ श्रीपद्मप्रभ नामानं, वासूपूज्यं सुरैर्नतं ॥ ४ ॥ शीतलं शीतलं लोके, श्रेयांसश्रेयः सदा ॥ कुंथुनाथंच वामेयं, श्री अभिनंदनं विभू ॥ ५ ॥ जिनानां नामभिर्वद्धाः पंचपष्टि सुप्नुद्रवः॥ यंत्रोयं राज्य ते यत्र, तत्रसौख्यं निरंतर ॥६॥ यस्मिन् गृहे महा भक्त्या, यंत्रोयं पूजते बुधै भूत प्रेत पीशाचादि, भयं तत्र न विद्यते ॥ ७ ॥ सकल गुण निधानं यंत्र मेन विशुद्धं ॥ हृदय कमल कोशे धिमतां धेयरूपं जयतिलोक गुरोः श्री सूरीराज्यस्य शिष्यो, वदंति सुख निदानं मोक्ष लक्ष्मी नीवासं ॥ ८ ॥ इति ॥

ॐनमः पार्श्वप्रभु पंकजे, वीश्व चींतामणी रत्नरे ॥ ह्रीं धरणींद्र पद्मावती, वैरुटा करे मुज जत्नरे ॥ ॐ ॥ १ ॥ अव

भोग सांती माहागुणीने, भती कीर्ति कांती नीत्यागमनी ॥ ॐ ह्रीं अक्षर शब्दथी, राने गाभी नगाभी नीनाशने ॐ ॥ २ ॥ जे अजीता चीजीया तथा, अपर नीजगान नीता देवी रे ॥ दश दीसा पाळग्रह अक्षजी, नीनादेवी परशन होय सेवी रे ॐ ॥ ३ ॥ ॥ ॐ श्रमीगाउभाग नमो नमो, तुही त्रीलोकनो नाथरे ॥ चोसठ इंद्र टोळे मळी, सेवीये प्रभुने जोडी हाथ रे ॥ ॐ ॥ ४ ॥ ॐह्रीं अर्हं प्रभु पासजी, मूळना मंत्रनुं बीज रे ॥ जापथी दुरीत दुरे रहे, आय मळे सवी चीजरे ॥ ॐ ॥ ॥ ५ ॥ गोडीप्रभु पार्श्व चींतामणी, थंभणो अर्हा छतो देवरे ॥ जग वल्लव जगत्र मांही जागता, अंतरीक प्रवंती करु सेवरे ॥ ॐ ॥ ६ ॥ श्री श्री संखेश्वर मंडणो, पार्श्वजीन प्रणणतः तरू कल्परे ॥ चुरीये दुष्टना व्रातने, पुरीये सुजे सुख तल्परे ॥ सुजयसोभाग्य सुख कल्परे ॥ ॐ ॥ ७ ॥ इति ॥

गौतमाष्टक.

श्री इंद्रभूति वसुभूतिपुत्रं, पटत्विभावं गौतमगोत्ररत्नं ॥ स्तुवंति देवासुरमानवेंद्राः, स गौतमो यच्छतु वांछितंमे ॥ १ ॥ श्री वर्द्धमाना त्रिपदीमवाप्य, मुहूर्त्तमात्रेण कृतानि येन ॥ अंगानि पूर्वाणि चतुर्दशापि, स गौतमो यच्छतुं वांछितं मे ॥ २ ॥

श्री वीरनाथेन पुरा प्रणीतं, मंत्रं महानंद सुखाय यस्य ॥ ध्यायंत्यमी सूरिवराः समग्राः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ३ ॥ यस्याभिधानं मुनयोपि सर्व्वे, गृन्हंति भिक्षाभ्रमणस्य काले ॥ मिष्टान्नपानां वरपूर्णकामाः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ४ ॥ अष्टापदाद्रौ गगने स्वशक्त्या, ययौ जिनानां पदवंदनाय ॥ निशम्य तीर्थ्यातिशयं सुरेभ्यः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ५ ॥ त्रिपंचसंख्याशततापसानां, तपःकृशानामपुनर्भवाय ॥ अक्षीणलब्ध्या परमान्तदाता, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ६ ॥ सदक्षिणं भोजन मेव देयं, साधर्मिकं संघसपर्ययेव ॥ कैवल्यवस्त्रं प्रददौ मुनीनां, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ७ ॥ शिवंगते भर्त्तरि वीरनाथे, युगप्रधानत्वमिहैव मत्वा ॥ पट्टाभिषेको विदधे सुरेंद्रैः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ८ ॥ श्री गौतमस्याऽष्टकमादरेण प्रबोधकाले मुनिपुंगवा ये ॥ पठंति ते सूरिपदं च देवा ॥ नदं लभंते नितरां क्रमेण ॥ ९ ॥ इति श्री गौतमस्तवस्पत्नृतिः समाप्तं ॥ श्री ॥

॥ ॐनमः पार्श्वनाथाय विश्वचिंतामणीयते ॐह्रीँ धरणेंद्र वैरोव्या पद्मादेवी युतायते ॥ १ ॥ शांति तुष्टि महापुष्टि धृति

कीर्त्ति विधायिनें ॐ ह्रीं द्रुटुव्यालवेताल सर्वाधि व्याधिना-शने ॥ २ ॥ जया जिताख्या विजया ख्या पराजितायान्विते दिशांपाल ग्रहैर्यक्षै विद्यादेवी भिरन्विते ॥ ३ ॥ ॐ आसि आ उसायनमः त्रैलोक्यनाथतां चतुष्पष्टि सुरेंद्रास्ते भासंते छत्रचामरैः ॥ ४ ॥ श्री संखेश्वर मंडनपार्श्व जिनप्रणत कल्प-तरु कल्पः चूरयविघ्न व्रातंपूरयमे वांछितं नाथ ॥ ५ ॥

॥ ॐ ॥

अथ श्री पाठक देवचंद्रकृत

॥ अध्यात्मगीता प्रारंभ. ॥

॥ राग ॥ ढाल भमरगीतानि ॥

प्रणमिए विश्व हित जैन वाणि ।
महानंद तरु सिंचवाऽमृत पाणी ॥
महा मोहपुर भेदवा वज्र पाणि ।
गहन भवफंद छेदन कृपाणी ॥ १ ॥

अर्थः—विश्व कहेतां जे जगत् तेने हीत के० कल्याणनी करनारी एहवी जैन्य के० श्रीवीतरागनी वाणी जेने प्रणमी के० नमस्कार करीए छीए, वली जीनवाणी कहेवी छे महा आनंदरूप तरु के० वृक्ष तेहने सिंचवा अमृत सरीखुं पाणीज होइने वर्तमान छे. वली जिनवाणी कहेवी छे मोहोटो एहवो मोहराजा तेनुं पुर के० नगर तेने भेदवा के० भागवाने वज्र सरीखी एहवी. वली ते वाणी केवीछे गहन के० अतिकठण भव जे संसार तेनो फंद के० बंधन तेने छेदवाने कृपाणी के० तरवारनी धारा सरीखी ॥ १ ॥

॥ चाल. ॥

द्रव्य अनंत प्रकाशक भाशक तत्व स्वरुप ।
आतम तत्व विबोधक सोधक सच्चिद्रूप ॥
नय निक्षेप प्रमाणे जाणे वस्तु समस्त ।
त्रिकरण जोगे प्रणमुं जैनागम सुप्रसस्त ॥ २॥

अर्थः—वली जिनवाणी केहेवी छे यणा एहवा पुद्गलादिक संबंधी जे द्रव्य तेने प्रगटकरी देखाडवावाली एहवी वली तत्व जे आत्मतत्व तेनी प्रकाश करवावाली आत्मतत्व जे आत्मानुं स्वरुप तेने बोध के० समजाववावाली वली चिद्रूप के० चेतनरुप एहवो जे आत्मस्वरुप तेने सोधक के० प्रगट करी देखाडे एहवी, वली जिनवाणी केहवी छे नय के० नैगमादिक सात नय तथा नामादि च्यार निक्षेपा तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणे करी समस्त वस्तु पदार्थनी जाणपणानी करणहारी छे. अन्यमतिनां शास्त्र छे ते अप्रसस्त छे, अने जिनमतनां आगम छे ते प्रसंसनीय छे एहवो जिनागम तेहनो त्रीकरण योगे करी मनोवाकाय योगे करी प्रणमुं छुं नमस्कार करुंछुं इति भावः ॥ २ ॥

जिणे आतमा शुद्धताये पिछाण्यो ।
तिणे लोक अलोकनो भाव जाण्यो ॥

आत्म रमणि मुणि जग विदीत ।
उपदिस्युं तिणे अध्यात्म गीता ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे सर्व द्रव्यनो ज्ञायक जे जीव द्रव्य सर्वद्रव्य मध्ये प्रधान ते आत्मद्रव्यनो लक्षण कहीये माटे प्रथम आत्मद्रव्यना जाणने साधक कहिये ते कहे छे. ते जिणे आतमा के० जे जिन समकित प्रमुखे आतमा छे ते शुद्धता छे मूल सत्तास्वरुप पिछाण्या के० ओळख्यो तेणे लोक तथा अलोकनो भाव सर्व जाण्यो जे आचारांग सूत्रे कह्युं छे जे एगंजाणइ सर्वंजाणइ ते मुनी केहवा छे ते आत्म के० आत्म स्वरुपमें जरमे एहवा मुनि जगत्मांहि प्रसिद्ध छे तेणे अध्यात्म गीतानो उपदेश कर्यो छे पण करता कहे के हुं नथी करतो इतीभाव॥३॥

द्रव्य सर्वना भावनो जाणग पासग एह ।
ज्ञाता कर्त्ता भोक्ता रमता परिणति गेह ॥
ग्राहक रक्षक व्यापक धारक धर्म समूह ।
दान लाभ वळ भोग उपभोगतणो जे व्यूह ॥ ४ ॥

अर्थः—द्रव्य सर्वना के० धर्मास्तिकायादिक षट् द्रव्यना गुणपर्याय तथा उदयिकादिक भावना भिन्न २ करी जाणयाछे तथा दिठा छे एहवो आत्मा छे. ज्ञाता के० स्वपरनो स्वरुप

जाणे छे ज्ञाने करिने कर्त्ता के० शुभाशुभ विभाव दशानो कर्त्ता नथी अने पोताना ज्ञानादि अनंतगुणरूप लक्ष्मी तेहनो करता छे अने पोताना ज्ञानादी अनंतगुणरूप जे पर्याय तेहना भोक्ता छे रमतापरि के० स्वपरिणतिरूप जे घर तेहने विषे सदाकाल रमे ज्ञाता तथा कर्त्ता तथा भोक्ता तथा रमता इत्यादिक परिणतिनागेह के०घरछे ग्राहक के०ज्ञानादि गुणधर्म समूह तेहने ग्रहे ते भणी ग्राहक ते धर्मनो राखणहार तथा स्वधर्मने विषे व्यापि रह्यो छे स्वपरिणतिने धरे ते धारक एटले ग्राहक रक्षक व्यापक धारक स्वधर्म समूहनो छे एहिज आत्म दान लाभ के०दानादिक पांच लब्धिना समूह प्रगट्या छे दानलब्धि ते दानांतराय कर्मक्षय गये दान पोताना ज्ञानादि अनंत गुणने विषे दीयेछे ते दान लब्धि १ लाभांतरायक्षयगये पोताना स्वरूपनो लाभ थयो ते लाभलब्धि २ भोगांतराय कर्म क्षय थाय त्यारे पोताना ज्ञानादि अनंतगुण भोगवे छे ते भोगलब्धि ३ उपभोगांतरायकर्म क्षय गये पोताना ज्ञानादि अनंतगुणना पर्याय तेहने समये समये उपभोग करे छे ते उपभोगलब्धि ४ वीर्यांतरायकर्म क्षय गये पोताना अनंतज्ञानादिकने विषे अनंतो वीर्य फोरवे छे ते वियांतरायलब्धि ५ तथा जिहां आत्मा ज्ञान दर्शन रूपगुण वेमयिज कहे छे तिहांजो वियादिक

गुण सिद्धमां नथी कहेता अने जिहां अनंतगुणी व्याख्या करे तिहां कहे छे एटले असंख्यात प्रदेशि अरुपी अखंड ज्ञानदर्शन गुण मयि उपयोग लक्षण कर्त्ता भोक्ता सहज परिणामे जीवद्रव्य जांणवो. जीवभाव द्रव्य प्राणे करीने सदाजीवे ते जीव, चेतजाणे ते माटे चेतन कहिये तथा नवा नवा पर्यायने पमाडे माटे आत्मा कहे छे इत्यादिक अनेक नाम छे. ॥ ४ ॥

संग्रहे एक आया वखाण्यो ।
नैगमे अंशथी जे प्रमाण्यो ॥
दुविध व्यवहार नय वस्तु वीहचे ।
अशुद्ध वलि शुद्ध भासन प्रपंचे ॥५॥

अर्थः—साते नये करी जिवनो स्वरुप ओलखावे छे संग्रह एक आत्मा वखाण्यो संग्रहनयनामतवालो सत्तानो ग्रहण करे छे एटले ए सर्वे जीव चेतना समूदाय जोते थके एक सरीखा छे ए संग्रहनयनोमत. नैगमनयनामतवाला एकअंस ग्रहीने सर्व वस्तुनो प्रमाण करे एटले जीवना आठ रुचक प्रदेश कर्म लीपाता नथी सदा उघाडा छे तेणे करी आत्मा सिद्ध समान जाणवो व्यवहारनय मते बे प्रकारे जिव कहेछे अशुद्ध ते अष्ट कर्माश्रित संसारी जीव अने शुद्ध ते अष्टकर्म

रहित सिद्ध एवं बे प्रकारे कहेंचे एक सकलकर्म क्षयकरी लो-
काग्रे विराजमान ते सिद्ध, बीजा संसारी तेहना बे भेद एक
अयोगी बीजा सयोगी इत्यादिक बे भेद व्यवहार नयना
मतवाले ते वस्तुना गुण पर्यायनी प्रवर्त्तिने ग्रहे छे ते प्रवर्त्ति
बे प्रकारनी जे द्रव्यना गुणनी शुद्धता जेथी निपजे ते प्रवर्त्ति
ते साधन शुद्ध व्यवहार १ अने जे प्रवर्त्ति करतां द्रव्यधर्मना
कार्य ते प्रवर्त्तिने अशुद्ध व्यवहार कहिये २ ॥ ५ ॥

अशुद्धपणे पण सय तेसठी भेद प्रमाण।
उदय विभेदे द्रव्यना भेद अनंत कहाण॥
शुद्धपणे चेतनता प्रगटे जिवथि भिन्न ॥
क्षयोपशमिक असंख्य क्षायिक एक अनुन्न ॥६॥

अर्थः—अशुद्ध व्यवहार नयने मते जीवना पांचसेत्रेशठ
भेदनो प्रमाण जाणवो अशुद्ध उदयीक भावने योगे करी
जीवांनो जीवद्रव्यना भेद अनंता कह्या छे अने शुद्ध व्यवहार
नयमते जीवनी चेतनता नीपजे अने भिन्नभिन्न ते अभेदात्म
दर्श [illegible] गुणपर्याय जीव जुदा जाणे जेहने घणां क्षयो-
पशम ते भिन्न कहिये तेहने ओछो क्षयोपशम तेहने ओछो
कहिये ते चेतना प्रगटी क्षयोपशमभावे अथवा क्षायकभावे
करी असंख्य [illegible] तेहना असंख्याता भेद छे क्षायिक
भावनो एक भेद छे बीजो भेद नथी ॥ ६ ॥

नामथि जिव चेतन प्रबुद्ध ।
क्षेत्रथी असंख्य देसा विशुद्ध ॥
द्रव्ये स्वगुण पर्याय पिंड ।
नित्य एकत्व सहजे अखंड ॥७॥

अर्थः—नामथी जीवने चेतन कहिये चेतना लक्षणो जीव चेतना ते ज्ञानदर्शन चारित्र तप उपयोग वीर्य लक्षण इत्यादि तथा बीजो अर्थ, नाम निक्षेपे जीव अथवा चेतन अथवा प्रबुद्ध कहिये, ए जीवना त्रण नाम कहीये क्षेत्रथी जीवनो स्वक्षेत्ररुप असंख्य प्रदेशात्मक अने विशुद्ध ते अ-त्यंत निर्मल छे द्रव्यथी जिव द्रव्य पोताना गुण ज्ञानादि स्व-पर्याय तेहनाज पिंड समुदायरुप छे ते द्रव्य कहीये अने नि-त्य ते सदैव शास्वतो छे केणे कर्यो नथी अने एकत्व ते निश्चय नयमते जीव सदाकाल पोताना स्वरुपमां एकत्वपणे छे सहज अखंड ते खंडाय नहि अछेदी अभेदी छे ॥७॥

रुजुसुये विकल्प परिणामे जीव स्वभाव ।
वर्त्तमान परिणितमय व्यक्ते ग्राहक भाव ॥
शब्दनये निज सत्ता जोतो इहतो धर्म्म ।
शुद्ध अरुपि चेतन अणग्रहतो नव कर्म ॥ ८ ॥

अर्थः—रुजु सुत्र नयनेमते जीव वीकल्परुप परिणामीक भाव ग्रहे छे एटले वर्त्तमान समये जीवने जेवो उपयोग होय तेवो प्रगट कहि बोलावे रुजुसूत्र नयमतवाळो यथाकश्चित् श्राध सामायके स्थितोपिमनो भावपदागृहेगततदाकेनापिपृष्टंश्राद्धों कुत्रः गतः एवं पृष्टे सत्यपिऽधुना भणितं ममस्वामी कुत्रापिग तास्ति त्रिष्टेसत्यपि एम कह्युं अने शब्द नयमते पोतानि आत्म सत्ताने जोतो ज्ञान दर्शन चारित्रादिक अनंतो धर्म पोतानी आत्मसत्ताने विषे रह्यो छे, तेहने प्रगट करवा इहतो वांछतो थको शुद्ध निर्मल अरुपी पुद्गलादि वीभावदशा रहित चेतना लक्षणो पोताना क्षयोपशमथी स्वगुणने साधकरुपणे प्रवर्त्ततो ते शब्द नयजीव कहीए, इहां जेटली आत्म प्रवर्त्ति नवाकर्मने न ग्रहे अबंधक थाय तेटलो जीवपणो गवेखे एटले अेहवा जीवने समये उपयोग होय ते समये नवा कर्मनो ग्रहण ग्रहवो नकरे ॥ ८ ॥

इणिपरे शुद्ध सिद्धात्म रुपी ।
मुक्त परशक्ति व्यक्त अरुपि ॥
समकिति देशयति सर्वविरति ।
धरे साध्यरुपे सदा तत्व प्रिति ॥ ९ ॥

एणिरिते शुद्ध सिद्धात्मरुपो शुद्ध जे सिद्ध भगवान ते

सरीखो निज आत्मा ध्यावतो आत्माभावे वीचरतो आत्म सरुपीछे ए मुक्त के० परपुद्गलादिक विभावथी मूकांणो छे पर क० उत्कृष्टोशक्ति के० आत्म सामर्थता व्यक्त के० प्रगटपणे तेणे अरुपीभावना साधक समकिति देश विरति तथा सर्व विरति ते जीवने साध्यपणे तत्वनी प्रीत वाल्हासछे एहवा जीवतेहने शब्दनयजीव कहीये पोतानो आत्मतत्व निरावर्ण करवारुप जेवेथोछे तेहने विषेज तेहनीप्रीतलागे परपरणितने विषे नहि. ॥ ९ ॥

समभिरुढ नये निरावरणि ज्ञानादिक गुण मुख्य ।
क्षायिक अनंत चतुष्टयि भोगि मुग्ध अलक्ष्य ॥
एवंभूति निरमळ सकळ स्वधर्म्म प्रकास ।
पूरण पर्यायप्रगटे पूरण शक्ति विलास ॥१०॥

अर्थः—समभीरुढनयमते शुक्लध्यान रुप अग्नीयेकरी घाती कर्मने क्षये निरावर्णपणे ज्ञानादि अनंत गुण रुप लक्ष्मी प्रगटे एटले मुख्य लक्ष्मी प्रगटे अने क्षायिकभावे अनंतचतुष्टय प्रगट्या अनंतज्ञान १ अनंत दर्शन २ अनंत चारित्र ३ अनंत विर्य ४ तेहना भोगी तेरमे चौदमे गुणठाणे केवली भगवान जाणवा तेहनो जांणपणो भोला अजांण जीव न जाणे एवं भूतनयमते कर्म मळ रहित निर्मल सकल संपूर्ण पोतानो

ज्ञानादीक स्वधर्म आत्मसत्ताने विषे प्रकाशकरे प्रगटकरेछे ए
वं धर्मनो प्रकाश प्रगटयो एटले एक एक प्रदेशे अनंता जे
पर्याय ते संपूर्ण प्रगटयाछे सकल गुणना पर्याय पोताने कार्य
करवे प्रवर्त्ते छे ते वारे पूर्ण पर्याय प्रगटेछे ते संपूर्ण शक्तिना
विलाश भोगववो प्रगटे इत्यर्थ. सादि अनंत भागे करिएवं-
भूत नये सिद्धनुं स्वरुप वखाण्युं. ॥ १० ॥

एम नय भंग संगे सनुरो ।
साधना सिद्धता रुप पुरो ॥
साधक भाव त्यां लगि अधूरो ।
साध्य सिद्धे नहि हेतू सूरो ॥११॥

अर्थः—इम नैगमादि सातनयनुं रुप भंगने संगेकरी दी-
पचंदे साधकता जे चोथा गुणठाणाथी मांडि अयोगी लगे
सर्व सिद्ध भाव कर्यो छे पुरो छे शुद्ध व्यवहार नयनमते चो-
था गुणठाणाथी मांडी साधन तेरमा गुणठाणा लगे साधक
भाव छे [illegible] नयमते कार्य सिद्ध [illegible] पुरो
[illegible] ज्यां त्यां साधक भाव छे [illegible] अधुरो छे सा
[illegible] नयमते [illegible]
[illegible] साधक [illegible] अधुरो कहीये अने जे
[illegible] सिद्ध [illegible] हेतु [illegible]

ण साधक पणानो प्रवर्त्तन ते शूरो के० बलवंत नही एटले
ार्य सिद्धे कारणनो बळ नहि ॥ ११ ॥

काळ अनादि अतित अनंते जे पर रक्त ।
संगांगि परिणामे वर्त्ते मोहा शक्त ॥
पुद्गळ भोगे रिझ्यो धारे पुद्गळ खंध ।
परकर्त्ता परिणामे बांधे कर्मना बंध ॥१२॥

अर्थः—जे वारे एवो आत्मा छे तेवारे संसार किम थाय
। कहे छे जे आत्मा अनादिकाल अतित के०गयो छे अ-
ातिकाळ अनंता पुद्गळ परावर्त्त थया परभाव जे पुद्गळीक
ाव्यने तेहना खंधना गुंण वर्णादिक तेहने विषे रक्त के०रा-
ागिपणो सेण थयो ते कहे छे संगागी के० पुद्गळे दीधा अंग
ानो जिये कर्यो संग एटले अंगी के० पुद्गळ जे परभाव
ेनो संग मीलवो अने आत्मा तेहने अंगी करी करे तेहनो
ंग करे एटले तेहना संगने परिणामे करी वर्त्तता मोहसे
आसक्त थयो तेवारे जीवने स्यो बिगाड थयो ते कहे छे
जीव पुद्गळने भोगे रीझ्यो थको पुद्गळना खंधने धरवानी
च्छा उपजे एटले पुद्गळने भोगे रीझ्यो इष्टता पांम्यो थको
ुद्गळना खंधने धारे, राखे, पुद्गळनुं ग्रहण करे छे अने प-
नो करता पोते थाय छे त्यारे कर्मना बंध पोते बांधे छे ॥

मथी ओलखाण करे अथवा अध्यात्मना शास्त्रनो अभ्यास करे तथा ध्याननुं स्वरुप गुरुगमथी धारीने प्रथम अभ्यास व्यवहारथि करवा मांडे इत्यादीक द्रव्य अध्यात्म ते भाव अध्यात्म प्रगट करवानुं कारण छे ए द्रव्य अध्यात्म जाणवुं २ हवे भाव अध्यात्म कहे छे एहवो आत्मा कुण ओलखेछे अध्यात्म ज्ञान थयुं होय ते ओलखे जे भाव अध्यातम ते मोक्षनुं कारण छे भाव अध्यात्म तेहने कहीये ज्ञानादिक शुद्ध उपयोगने अनुजायि सन्मूख प्रवर्त्ति ते भाव अध्यात्म कहिये एहवो आत्मानो गुण थयो तिवारे जीवने स्यो गुण निपजें जे संसार समुद्रनो उछेदन करे एटले संसार घटाडे तेथि थोडा काळमांहे सिद्धिवरे ॥ १७ ॥

एह प्रबोधना कारण तारण सदगुरु संग ।
श्रुत उपयोगी चरण नंदि कारि गुरु रंग ॥
आतम तत्वालंबि रमता आतम राम ।
शुद्ध स्वरुपने भोगे योगे जसु विसराम ॥१८॥

अर्थः—एहवुं जे आतम ज्ञान पूर्वे कह्युं तेहवुं तेहना बोधना कारण के० संसार समुद्रथी आत्म स्वरुपनो प्रतिबोध देइ ओलखाण करावी ने कोण तारे भला जे सदगुरु तेहनो संग भक्ति करतां बोधवीजजे समकीत भव्य जीवने करावीने

संसार समुद्रथी तारे ते गुरुनो वर्णव करीएछीए गुरु कहेवा होय ते कहीयेछीये भाव श्रुत ज्ञांनना उपयोगने विषे सदा रमे छे चरणादी क० चारित्रने विषे रमे छे सदा आनंद पणे वर्त्तेछे एवा गुरु संघाथे रंग करवो ते गुरुनी सेवा करवी जेथी अध्यात्मज्ञान पांमीए वली गुरु कहेवाछे जेम आत्मा प्रगट थाय तेहनो उद्यम छे रमणीय तेमां आत्मामां रह्या छे आत्म स्वरुपने अवलंबी रमण करे छे सदा एहवा आत्मारांम आत्म स्वरुपने विषे रमे ते आत्माराम कहीये वली गुरु कहेवाछे जेहने शुद्ध स्वरुपना भोगनी इच्छा छे तेहनो भाव योग जे ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रण ३ योग साधे छे जमुके० ए योगने विषे विश्रामपणे वर्त्ते छे एवा गुरु मीले तो अध्यात्म स्वरुप जांणीये ॥१८॥

सद्गुरु योगथी बहुल जिव ।
कोइ वली सहेजथी थइ सजिव ॥
आत्म शक्ति करी गंठी भेदी ।
भेद ज्ञानी थयो आत्म वेदी ॥१९॥

अर्थः—घणा जीव एवा शुद्ध गुरुथी बोध पामे एवी रित्ते सद्गुरुनी संघ सेवा थकी घणा जीवने समकितनी प्राप्ती होय कोइ वली गुरुनी योगवाइ विना भवस्थिति पाकी हुइ

तो कोइक जीव सहजथी बोध पामे एटले कोइक जीव मह
जथी ज्यार प्रत्येक बुद्धादिकनी पेरे समकित पामे गुरुना
उपदेश वीनाज इत्यर्थः जीव पोताना आत्मानी रागद्वेष प
रिणाम भावकर्मनी गांठ आत्माने गुप्तपणुं समलतापणुंकि
भूत ते गांठ जे अनादिनी छे ते पोतानी शक्तिए करिने भेदे
ज्यां ग्रंथी भेद करवो त्यांनो पोतानी आत्मशक्तिए अपूर्व
करण क० पहेलां कदि न आव्या एवा परिणाम ते अपूर्व कर
णरूप पोताना वीर्योल्लासे करिने रागद्वेषनी गांठ भेदे तो स
मकितनी प्राप्ती पामे गुरुना योग वीनाये तेवारे स्यो गुण
निपजे ते कहे छे भेद ज्ञान जे शरीर आत्मानो भेद विवेक
भिन्नता वे'चणरूप ज्ञान थयुं शरीर जडने अचेतन छे आत्मा
चेतन छे एहवो भावथी न्यारो ओलख्यो ते भेद ज्ञान थयुं,
त्यारे आत्मानी रुद्धि हती ते जाणी तेवारे आत्म स्वरुपनो
वेदी जाण थयो ॥ १९ ॥

द्रव्य गुण पर्याये अनंतनी थइ परतित ।
जाण्यो आतम कर्त्ता भोक्ता गइ परभित ॥
श्रद्धा योगे उपन्यो भासन सु नये सत्य ।
साध्यालंबी चेतना वलगि आतम तत्व॥२०॥

अर्थः—आत्म स्वरुपने उपयोगे वर्ते तेवारे एक द्रव्यने

विषे अनंतागुण छे ते मध्ये एकेका गुणमे अनंता पर्याय छे जे जीम हत्ता तेम परतित थइ तेवारे स्युं थयुं आत्मा पोताना स्वभावनो कर्त्ता भोक्ता थयो परभावना कर्त्तादीकनी भूल मटि गइ एटले निर्भय थयो एवी श्रद्धाने योगे प्रतीत प्रगटी त्यारे जाणपणुं पोतानुं छतुं थयुं जेवारे ओलख्यो एवो तेवारे तेहनुं आलंबन करवा मांडयुं त्यारे साध्य जे स्वभावनुं छे जो तेहनुं आलंबन करवा मांडयुं त्यारे चेतना वलगी आत्मतत्व जे ज्ञानादिकने विषे ॥२०॥

इंद्र चंद्रादि पद रोग जाण्यो ।
शुद्ध निज शुद्धता धन पिछाण्यो ॥
आत्म धन अन्य आपे न चोरे ।
कोण जग दीन वळी कोण जोरे ॥२१॥

अर्थः—एवुं ज्यारे खरुं भासन थयुं त्यारे इंद्रनी पदवी चंद्रनी पदवी चक्रवर्त्तिपणुं वासुदेवपणुं ए उदायिक सिद्धि इंद्रियजनित पुद्गलिक सुख ए सर्व रोग जांण्या शुद्धनीज क०शुद्ध निर्मळ पोताना आत्मानो शुद्धतापणो जे ज्ञानादिक धन जे पोतानी भावरुद्धि हती ते जाणी ओळखी पोताना आत्मानी रुद्धि जे अरुपी धन ज्ञानादिक भाव लक्ष्मी [illegible] कोइथी आपी अपाती न-

थी कोइथी चोरी लेवाती नथी एटले [illegible] कोइथी
आपी जाय नहि कोइ कोइनी लेवाय नहीं [illegible]
दीनपणुं टल्युं अने जगतने विषे कोइ एवो दीन नथी जेने
ने आपे अने कोइथी आत्मानी ऋद्धि लेवाइ नहीं एवो कोइ
जोरावर नथी जे खेंची ले, एवो ओळख्यो तेवारे [illegible]
ऋद्धिनो भे पण टळी गयो ॥२१॥

आतम सर्व समान नीधान महा सुख कंद ।
सिद्धतणा साधर्म्मि सत्ताये गुण वृंद ॥
जेह स्वजाति तेहथीः कोण करे वध बंध ।
प्रगट्यो भाव अहिंसक जाणे शुद्ध प्रबंध॥२१॥

अर्थः—आत्म क० आत्मा सर्व सरीखा छे कोइनो न्यू-न्याधिक छे नहीं निदान क० निश्चे महासुखरूप छे जे सुख-नी किहांइ उपमा नथी ते सुख सीद्ध भगवांनने प्रगट थयुं छे अने संसारी जीवने ए सूख सत्तामां रह्यु छे बीजी परे अर्थ सर्व जीव सत्तायें एक सरिखा सामान्य पणे जाणवा निश्चय नयने मते सर्व जीव ज्ञानदर्शन चारित्ररुप निधाने करी युक्त छे निश्चयथी सर्वे जीव सत्ताए महासुखना कंदमूळ छे सिद्ध क० सिद्धना जीव तथा संसारी जीव सरिखा सा-धर्मीपणे गणे छे पण सत्ताये वेना गुण बरावर छे तेवारे

पोतानी बराबरीना सकल जीव थया तथा बिजी रीते नि-
श्चय नयथी सर्व जीवनो धर्म सत्तायें सिद्ध समान एक स-
रिखो छे जेनो सरखो धर्म होय तेने साधर्मी कहिये सर्व
जीव सत्तायें ज्ञानादी गुणना वृंद समूह छे तेवारे सर्व जीव
एक जातिना थया कुटुंब थयुं तेवारे तेनी हिंस्या किम थाय
तेवारे तेहने दुःख किम देवाय तेहनो वध बंध कुण करे एवी
रीते ज्यारे दया प्रणमे तेवारे भाव अहिंसकपणुं प्रगट थाय
तेवारे जीनशासन शुद्ध जाण्युं तेवारे शुद्ध स्वरुपनो प्रबंध
जांण्यो ते ज्ञाता कहिये ॥ यतः ॥ यथाममप्रियाप्राणा तथा
तस्यापि देहीनां इतिमत्वान कर्त्तव्यो घोरप्राणी वधो बुधैः२२

ज्ञाननी तीक्ष्णता चरण तेह ।
ज्ञान एकत्वता ध्यान गेह ॥
आत्मता तात्मता पूर्ण भावे ।
तदा निर्मला नंद संपूर्ण पावे ॥२३॥

अर्थः—एटले ज्ञान दर्शन चारित्र रुप निश्चे नय ज्ञाननी
तीक्षणता क० एहवुं जे तीक्षणतापणे नीर्मल आत्मा ज्ञाननो
उपयोग तेहिज चारित्र कहिये जे पोताना आत्म स्वरुपना
ज्ञानमें एकत्वपणे टके ते ध्यांन रुपीयुं घर कहीये एहवो जे
आत्मा आत्मानी आत्मताने ज्ञानादिक पूर्ण भावने पामे तदा

नादि कालना जिवने शत्रुभुत थइ लाग्या छे ते संग्रामा ते नाश पाम्याज एटले समकिते मीथ्यात्वने हण्यो शिगन्न सुभट कंदर्प शुभट हण्यो एम कहे छे. ॥ ३२ ॥

इम स्वभाविक थयो आत्मविर ।
भोगवे आत्म संपदि सुधिर ॥
जेह उदयागता प्रकृति वळगी ।
अव्यापक थको खेरवे तेह अळगी ॥३३॥

अर्थः—इमस्व के० एवी रीते आत्मानो वीर्य पराक्रमे करी सूरवीर थयो अनंत बलनो धणि कर्म शत्रुने जीतीने पर परिणतीथी निवर्त्यो आत्म स्वभावे रमण करीने सुरवीर थयो भोगवे क० आत्मानी संपदा ज्ञानादिक सुधीर क० निर्भयपणे भोगवे जे उदय आवी प्रकृति कर्मनी आत्माने वलगी छे अव्यापक क० निर्लेप न्यारो थको उदय आवी कर्म प्रकृति वलगी छे ते भोगवी खेरवे अलगी करे समभावपणे. ३३

धर्मध्यान इक तानमे ध्यावे अरिहा सिद्ध ।
ते परिणतीथि प्रगटी तात्विक सहिज समृद्ध ॥
स्वस्व रुप एकत्वे तन्मय गुण पर्याय ।
ध्याने ध्याता निर्मोहिने विकल्प जाय ॥३४॥

अर्थः—धर्म ध्यान क० पोतानो आत्मीक धर्म शतागम ने विषे अनंतो रह्यो छे ते धर्मने ओलखी प्रसिद्ध करी तेहना ध्याननें विषे प्रवर्त्ते ते धर्म ध्यानना शुद्ध शुकलध्यान रुपा नित परिणामरूप एकत्वपणे अरिहंत सीद्धना गुण ते पोताना आत्मने समतुल्य गणिने ते ध्यावे नीरागतापणुं ओलखीने ध्यावे ते शुद्ध परिणती थकी प्रगटी नीपनी तत्व क० तद्रूपपणे जेवी सत्ताए हती तेवी अकृत्रिम सहज स्वभावीक समृद्धि क० ज्ञानादि लक्ष्मी प्रगटी ते वारे स्वस्वरूप क० पोताना आत्मीक स्वरुपने विषे एकत्व क० एकत्वपणे तन्मय उपयोगे लयलीन थाय पोताना आत्म गुण अने आत्मपर्यायना ध्याननें विषे तेहवा ध्याननें विषे एकत्वपणें प्रवर्त्ते तेवारे ते जीव निर्मोही मोह रहित थयो ते वारे सर्व विकल्प दुर जाय विकल्प मटे तिवारे जेगुण थाय ते कहेछे ॥ २४ ॥ आगली गाथामां

यदा निर्विकल्पी थयो शुद्ध ब्रह्म ।
तदा अनुभवे शुद्ध आनंद सर्म ॥
भेद रत्न त्रयी तिक्ष्णताये ।
अभेद रत्न त्रयीमें समाये ॥२५॥

अर्थः—यदा क० जे वारे संकल्प विकल्प रहित निर्विकल्पी आत्मा थयो ते वारे शुद्ध ब्रह्म क० शुद्ध ज्ञानमयी थयो जीव

एटले पोताना आत्म स्वरुपना शुद्ध ज्ञानमयी थयो तदा क० ते वारे अनुभवे क० भोगवे शुद्ध निर्मल आनंदमयी सुखरुप अप्रयासी पणे भोगवे आत्मीक सुखमते भेद रत्नत्रयी क० ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ ते भेद पणे ते ज्ञान ज्ञानरुपे जाणे १ दर्शनते दर्शनरुपे जाणे श्रद्धा सदहणा रुप २ चारित्र चारित्र रुपे जाणे तेथी कर्ताए भेद रत्नत्रयी रुप तीक्षणता नीव्रतीए करी अभेद रत्न त्रयी क० अन्योन्य सहाय वीना ते अभेद रत्नत्रयी ते सुज्ञाननुं जाणपणुं ज्ञाननुं श्रध्धान ज्ञाननी थीरता रमणता एकता १ दर्शननुं जाणपणुं श्रद्धांन थिरता रमणता एकता चारीत्रनुं जाणपणुं श्रद्धांन थिरता रमता ३ ए त्रणनी एकत्वता ते अभेद रत्नत्रयी कहिये ॥ ३५ ॥

दर्शन ज्ञान चरण गुण समग् एक एकना हेतु ।
स्वस्व हेतु थया समकाळे तेह अभेद भापेतु ॥
पूर्ण स्वजाति समाधि घन घाति दल छिन्न ।
क्षायिकभावे प्रगटे आतम धर्म विभिन्न ॥ ३६ ॥

अर्थः—दर्शन के० सम्यग्दर्शन १ सम्यग्ज्ञान २ सम्यग् चारित्ररुप जे गुण एटले दर्शन छे ते जीवने सामान्य उपयोग गुण १ ज्ञान छे ते जीवनो विशेप उपयोगरुप गुण छे एटले

दर्शन तथा ज्ञान ए बेने विषे थीरतारुप एकाग्रता एणे उ-
पयोग वर्त्त ते चारित्र जाणवा माटे ए त्रण परस्पर एक क०
एक एकना हेतु कारण रुप जांणवा स्वस्व क०पोत पोताना
एक समये हेतु थया ज्ञान १ दर्शन २ चारित्ररुप रत्नत्रयी ते
एकतापणे प्रणमी तेमज स्वक्षेत्र क० आत्मा असंख्याता प्रदे-
शरुप क्षेत्रने विषे भेद भाव रहित अभेदपणे प्रणम्या एक
रुप थया तेवारे केवो थयो घनघातिया कर्मना समुहनां द-
ळीयां आत्मप्रदेशने विषे लाग्यां हतां ते छिन्न क०छेदी नां-
ख्यां तेवारे पूर्ण क०संपूर्ण पोतानी जाती जे ज्ञानादि गुणनी
समाधि ध्यांन तेणे करी घनघाति कर्म छेद्यां क्षायिकभाव
क०क्षायिकभावे प्रगटे थके एटले सत्तागतने विषे अनंतो
आत्मीक धर्म शक्तिपणे रह्यो हतो ते व्यक्त क०प्रगटपणे क्षा-
यिकभावे प्रगट्यो तेवारे विभिन्न क०अभेद आत्मपणे लो-
कालोकना भाव जांण्या भास्कर थका विचरे ॥३६॥

पछे योग रुंधि थयो ते अयोगी ।
भाव सैले सत्ता अचळ अभंगी ॥
पंच लघु अक्षरे कार्य कारी ।
भवोप ग्रही कर्म संतति विडारी ॥३७॥

अर्थः—तेरमा गुणठाणाने विषे छेले समययोग त्रोक मन

वचन काया ए त्रण योगनी रुधीने सूक्ष्म क्रिया मति पाती शुक्ल ध्याननो त्रीजो पाइयो ध्यातो चउदमे गुणस्थानके चढे तिहां प्रथम बादर मनोवाकाय रुधे पछे सूक्ष्मयोग रुंधि अ-योगी थयो भाव क० स्वभावे सैलेसता क० शैलनाइ क० मेरु पर्वतनी परे अकंप अडग अचळ थीरताभावें अ-डंग थयो एवो स्वभाव अचळ थयो पंचलघु क० चउदमे गु-ण स्थानीक जीव अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए पांच लघु अक्षर रुप उच्चार करे एटलामां स्वसिद्ध कार्य निपजावे भवोप ग्रहीक. भवने आश्रयी जे अघातिकर्म पुद्गळनी श्रेणीअव शेष क० थाकतां रह्यां हता ते विडारी ध्यांनाग्नि शुक्लध्यानना चोथा पाइयाने ध्याने करी कर्मक्षय करे तेवार पछी ॥ ३७॥

समश्रेणे एक समये पहोता जे लोकांति ।
अफु समाण गति निर्मळ चेतन भाव महांति॥
चरम त्रिभाग विहीन प्रमाणे जसु अवगाह ।
आत्मभेद अरुप ऽखंडानंदा अवाह ॥३८॥

अर्थः-समश्रेणे करी एक समयने विषे चौद राज लो-कने अंते लोकाग्र भागे अजरामर स्थानके जे क्षेत्रे अनंता सिद्ध परमात्मा बिराजमान वर्त्ते छे ते सिद्धक्षेत्रे पोहता सि-द्धगति अफुसमाण क० आकाशना क्षेत्रना प्रदेश प्रथम फरस्या

छे तेहज आकाश प्रदेशनी समश्रेणिइ वर्त्तता सिद्धि पाम्या सीद्धि वर्या कर्मरुप मल थकी रहित निर्मळ थया तेवारे शुद्ध ज्ञानादि आत्म स्वभावे क्षायिक भावे सदाकाळ सास्वता रहे सीध्द क्षेत्रमें चरम के० छेला शरीरनो त्रीजो भाग घटाडीने अवशेषे के० थाकता बे भागना शरीर प्रमाणे आत्म प्रदेशनो घन करी ते प्रमाणे अवगाहना करी सिध्दक्षेत्रने विषे विराजमान आत्मप्रदेश के० आत्मप्रदेश अरुपी छे अखंड आनंदमयी अवाह के० अवाधा के० पीडा रहित स्वक्षेत्रे व्याप्या छे आत्म स्वभावमे रह्या छे ॥३८॥

जिहां एक सिद्धात्म तिहां छे अनंता ।
अवन्ना अगंधा नहि फास मंता ॥
आत्म गुण पूर्णतावंत संता ।
निरावाध अत्यंत सुखा स्वादवंता ॥३९॥

अर्थः—जिहां एक सिध्दात्म के० जिहां एक सीध्द परमातमा छे ते क्षेत्रने विषे अनंता सिध्द भेळा मळीने रह्या छे ते सिध्द केहवा छे अवन्ना के० पांचवर्ण रहित अगंधा के० बे गंध रहित नहि फासनता के० आठ फरसरुप सरीर थकी पण रहित छे वळी सीध्द केहवा छे आत्मगुण के० पोताना आत्माना गुण ज्ञानादि अनंतगुणनी पूर्णता छता भाव

पद् कहेवाभगव्या छे वळी निरावाध के०सर्व प्रकारे अवाधा पिडा थकी सीध्द रहित छे अत्यंत सूषा स्वादवंत के०च्यार नीकायना देवतानां इंद्रिय जनीत पुद्गलीक जे सुख ते त्रणे काळनो भेळो करी अनंतगुणो वर्ग वर्गित करीये पण सिध्द परमात्मा आत्मिक सुख अनुभवे छे ते सुखने तुल्य एक समय मात्र पण न आवे एहवा स्वभावीक सूखनो आस्वादन करे छे ॥३९॥

कर्त्ता कारण कार्य निज परिणामीक भाव।
ज्ञाता ज्ञायक भोग्य भोग्यता शुध्ध स्वभाव॥
ग्राहक रक्षक व्यापक तन्मयताइ लीन।
पूरण आतमधर्म प्रकास रसे लय लीन॥४०॥

अर्थः—कर्त्ता कहेतां सिद्धनो जीव १ कारण क० पोताना ज्ञानादि अनंत गुण संपूर्ण २ अने कार्यते स्वगुण रमणता क०३ सिद्ध स्वभाव ए परिणामीक भावे परिणम्या छे ज्ञाता क ज्ञाने करी ज्ञेय पदार्थ जाणे छे भोग जे भोगववा जोग्य शु द्ध स्वभाव स्वज्ञानादि तेहनो भोक्ता छे ग्राहक क० परस्वरूप नि भाव दशानो अनादिकालनो ग्रहणपणो हतो ते नीवारी पोताना स्वरूपनो ग्रहणपणो कर्यो छे अने स्व स्वरूपथी भी न्न पुद्गलादि वस्तु अनादिकालनी तेहना रक्षक पणानीम

ट्यां छे ते द्रव्य सिद्ध ३ सामर्थ पर्याय प्रवर्त्तनारुप अनंतो धर्म प्रगट्यो तेणे करी नव नवा ज्ञेयनी वर्त्तना रुप पर्यायनो उत्पाद वय समये १ अनंतो २ थइ रह्यो छे तेणे सिद्ध अनंतो सूख भोगवे छे ते भाव सीद्ध ४ ए च्यार नीक्षेपे करी सीद्ध सदा रक्त प्रवर्त्ते छे आत्मीक आनंद सुख भोगवे छे केवळनाणि के० एहवो सीद्धनो स्वरुप प्रत्यक्षपणे केवळज्ञानी जाणे देखे अने सीद्ध परमात्माने अनंतगुणना समुह प्रगट्यां छे तेहने विषे अनंतो सुख भोगवे छे ते केवळज्ञानी गम्य छे पण छद्मस्थ मुनीना जाण्यामां न आवे ॥ ४२ ॥

एहवि शुध्ध सिध्धता करण इह ।
इंद्रिय सुख थकि जे नीरीहा ॥
पुद्गळी भावना जे असंगी ।
ते मुनी शुध्ध परमार्थ रंगी ॥ ४३ ॥

अर्थः—एहवी क० जे पूर्वे वखाणी शुद्ध निर्मल सिध्धता क० सिध्ध परमात्मानि संपदा छे तेहवी सिद्ध संपदा प्रगट करवानी जे मुनीने इहा क० वांछा छे ते मुनी केहवा छे इद्रिय क० पांच इंद्रियना त्रेवीस वीषय सुख पुद्गलीक तेहनी वांछा रहित वर्त्तेछे वली मुनी केवा छे पुद्गलीक० स्व स्वरुपथी भिन्न क० जुदा ऐहवा सुभाऽसुभ वीभाव दशारुप जे

ज्ञानादि अनंत गुणरूप भाव प्रगट्यो छे तत्कालने विषे स-
दाकाल शुद्ध उपयोगवंत थका वर्ते छे आत्मगुण प्रगट्यो छे ॥१॥

सादिअनंत अविनाशि अव्याबाधि परिणाम ।
उपादान गुण तेहज कारण कारज धाम ॥
मुख्य निक्षेप चतुष्टय जुत्तो रत्तो पूर्णानंद ।
केवळ नाणि जाणे तेहना गुणनो छंद ॥४२॥

अर्थः–सादिअनंत के० वली सिद्ध कहेवा छे एक सिद्ध आश्रि ते सादि अनंत स्थिति छे अने अनेक सीद्ध आश्री अनादि अनंत स्थिति छे अने जे सिद्धपणो निपन्यो छे तेहनो फरि विनासपणो नथी अयास वोना अनंतो आत्मीक सूख अनुभवेछे पोताना परिणामिक भावे वर्त्ते छे अव्यासी परीणामे रह्या छे, उपादान के० स्वज्ञानादी अनंतगुण कारणरुप प्रगट्याछे अने अनेकज्ञेय पदार्थ जाणवा देखवारुप पर्यायनो उत्पाद वय समये समये थइ रह्या छे ते कार्य पोताना आत्म स्वरुपने विषे निवास कर्यो छे एटले एत्रणे एकतापणे परिणमेछे मुख्यनी के० अने निर्मळ च्यार निक्षेपे करी युक्त छे सीध्द अने सीद्ध एहवो नाम त्रणेकाले एकरुप शास्वतो वर्त्ते छे १ अने थापना सिद्ध ते त्रीभागे शरीर प्रमाणे क्षेत्र अवगाही रह्या छे २ द्र-व्य सिद्ध ते सिद्धनादि गुण रुप छतां पर्याय वस्तुरुप प्रग-

ट्या छे ते द्रव्य सिद्ध ३ सामर्थ पर्याय प्रवर्त्तनारुप अनंतो धर्म प्रगट्यो तेणे करी नव नवा ज्ञेयनी वर्त्तना रुप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये १ अनंतो २ थइ रह्यो छे तेणे सिद्ध अनंतो सूख भोगवे छे ते भाव सीद्ध ४ ए च्यार नीक्षेपे करी सीद्ध सदा रक्त प्रवर्त्ते छे आत्मीक आनंद सुख भोगवे छे केवलनाणि क० एहवो सीद्धनो स्वरुप प्रत्यक्षपणे केवळज्ञानी जाणे देखे अने सीद्ध परमात्माने अनंतगुणना समुह प्रगट्या छे तेहने विषे अनंतो सुख भोगवे छे ते केवळज्ञानी गम्य छे पण छद्मस्थ मुनीना जाण्यामां न आवे ॥४२॥

एहवि शुध्ध सिध्धता करण इह ।
इंद्रिय सुख थकि जे नीरीहा ॥
पुद्गळी भावना जे असंगी ।
ते मुनी शुध्ध परमार्थ रंगी ॥४३॥

अर्थः—एहवी क० जे पूर्वे वखाणी शुध्द निर्मल सिध्दता क० सिध्द परमात्मानि संपदा छे तेहवी सिद्ध संपदा प्रगट करवानी जे मुनीने इहा क० वांछा छे ते मुनी केहवा छे इंद्रिय क० पांच इंद्रियना वेवीस [illegible] क तेहनी

पुद्गलीकभाव तेहना संगथी रहित न्यारा जे मुनी प्रवर्त्ते छे ते असंगी ते मुनीराज निर्मल बुध्दिना धणी अने जे सध्य एक अने साधन अनेक एवी रीते सत्ता गतनां धर्मने साधे ते मुनी परमार्थ साधवानो रंगी छे ॥ ४३ ॥

स्याद्वाद आतम सत्ता रुची समकित तेह।
आतम धर्मनो भासन निर्मळ ज्ञानी जेह॥
आतम रमणी चरणि ध्यानी आतम लीन।
आतमधर्म रम्यो तेणें भव्य सदा सुख पीन॥४४॥

अर्थः—स्याद्वाद क० नित्य अनित्यादि आठ पक्ष करी अनेकांत नयरुप मार्ग ते स्याद्वादे करी आत्मसत्ता रुचीने ओलखीने प्रकट करवानी रुची प्रवर्त्ति समकित ते मुनी शुध्द भासनरुप समकित भाव सहित जाणवा आतमधर्मे क० आत्मा शूध्द निश्चय नये करी जोतां तो पोतानी आत्म सत्ताने विषे ज्ञानादि अनंत गुण रुप धर्म रह्यो छे तेहनो भासन परतीत प्रगटी तिवारे निर्मल ज्ञांनी थयो निर्मल जाणपणुं थयुं त्यां आत्म क० तेमुनी सदाकाल स्वआत्म स्वरुप रमण करे तेहने शुध्द चारीत्रनो उपयोग वर्त्या तिवारे आत्मस्वरुपना ध्यानने लीन पणे प्रवर्त्यो तिवारे निर्मल शुध्द ध्यानी थयो जाणवो ते मुनी आतमधर्म क० कारणे हे भव्य

जीवो ते आत्मधर्मंमे रमो तेणे करी सदाकाल पुष्ट सुख उपजे ॥ ४४ ॥

अहो भव्य तुम्हे ओलखो जैन धर्म।
जिणे पामीये शुध्ध अध्यात्म मर्म ॥
अल्पकाळे टळे दुष्ट कर्म।
पामीयै सोय आनंद सर्म ॥ ४५ ॥

अर्थः—अहो भव्य जीवो अहो देवाणु प्रीइ तुहमे ओलखो जैनधर्म श्री वीतरागे समोसरणने विषे बेसीने भाख्यो निश्चय आत्मीक धर्म ज्ञानादिक शुध्द उपयोग लक्षणो धर्म ज्ञानादिक शुध्द उपयोग लक्षणो धर्म अंतरंग सत्ता गते रह्यो छे तेहनी तुमे ओलखाण करो तेहथि सुख थाय जिणे वस्तु स्वभाव ओलख्याथी आत्मा पामे शुध्द अध्यात्मनो मर्म रहस्य जे आत्म स्वरुप प्रगटे पामे तेहथी जीवने स्युं गुण थाय जेवली थोडा कालमां हे दुष्ट दुःखदाइ ज्ञानावर्णादि आठ कर्मनो नाश थइ आनंद जे पोतानो नीत्यानंद परम सुख तेहनो स्थानक जीहां अनंता सीध्द वसेछे एवो स्वस्थानरुप घर प्रते पामे ॥ ४५ ॥

नय निक्षेप प्रमाणे जाणो जिवा अजिव।
स्वपर विवेचण करतं ––े लाभ सदिव ॥

निश्चय ने व्यवहारे विचरे जे मुनिराज।
भवसागरना तारण निर्भय तेह जिहाज ॥४६॥

अर्थः—नय क० नैगमादि सातनयनामादि च्यार निक्षेपे अने प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणे करी जीव अजीवादि नवतत्व पट्द्रव्यनो स्वरुप जाणे स्वपर क० स्वजीव चेतनावंत ज्ञानादिक गुण पर जे अजीव पुद्गलवंत सडण पडण विध्वंसण धर्म एवी रीते स्वपरनी वेंचण करतां थकां सदा स्वरुपनो लाभ हुवे निश्चय क० नीश्चय नयते आत्म स्वरुपने विषे द्रष्टी राखी ओळखीने व्यवहार शुद्ध विचरे शुद्ध क्रिया आचरणाइ प्रवर्त्ते जे मुनीराज ते मुनीराज निश्चय नय व्यवहार नयनो उपदेश दे निश्चय धर्म निर्जरा हेतु छे बाह्य व्यवहार धर्म पुन्यबंधनो हेतुछे एहवा उपदेश दइने भव समुद्रथी तारवाने जिहाज समान जाणवा निर्भयपणे भय रहित जिम जिहाज आलंबी समुद्रने तरे तीम आत्म ज्ञानी मुनीराज ते आलंबी भव्य प्रांणी संसारनो पार पामे. ॥ ४६ ॥

वस्तु तत्वे रम्या ते निग्रंथ।
तत्त्व अभ्यास तिहां साधु पंथ॥
तिणे गीतार्थ चरणे रहिजे।
शुध्य सिध्धांत रसलो लहिजे ॥४७॥

अर्थः—वस्तु धर्म क० आत्म धर्मने विषे रम्याते निग्रंथ तत्वक० आत्म तत्वना अभ्यासने विषे सदाकाळ निरंतर पणे जेहनो उपयोग वर्त्ते तिहां साधु पंथने साधुनो मार्ग कहीए मोक्ष मार्गनो साधनारो ते साधु कहीए द्रव्य चारित्र ते हिंस्यादीक पांच आश्रवनो त्याग पांच महाव्रति चरण सित्तरि करण सित्तरि पाळे वेतालीस दोष रहित आहार ले सर्व सिद्धांत भणे वांचे संभळावे एवाय पण आत्म स्वरुप द्रव्य ओळख्यो नथी शुद्ध उपयोगे न वर्त्तते द्रव्य चारित्रिया कहिए १ भाव चारित्र ते आत्म स्वरुपमां एकत्व थावुं ते आत्म स्वरुपनी थिरता आत्मस्वरुपनुं रमण आत्म स्वरुप नीश्चलता आत्म स्वरुप भोगी परभाव अभोगी ते भाव चारित्र २ तेणे गीतार्थ क० आत्म स्वरुपना जाण एवा गीतार्थ मुनीना चरण कमळ सेवीए मोक्षा भीलाषी मुनीने सेव्याथी स्युं नीपजे शुद्ध क० शुद्ध निर्मळ यथार्थ निश्शंदेह पणे सिद्धांत जे आगम संबंधी या जिन वांणीना ज्ञानरस प्रते चाखीजे गुरु कृपा थकि तथा आगमनो रहस्य ते स्याने कहीए यतः आत्माराम अनुभव भजो तजो परतणिमाया एह छे सार जिनवचननुं वळि एह शिवछाया १ श्री परमात्माए त्रिगडे बेसी एहवी परुपणा करि अहो भव्य जीवो आत्माने आराम क० रमावे

क० पुद्गल पर भावनो त्याग करवो एह जिन वचननुं सार छे वळी शीव तरुनी छाया छे संसारतापनी टाळण हारि इत्यर्थ ॥ ४७ ॥

श्रुत अभ्यासी चोमासि वासी लिंवडी ठाम।
शासन रागी सोभागी श्रावकनां बहु धाम॥
खरतर गछ पाठक श्री दीपचंद्र सुपसाय।
देवचंद्र निज हरखे गायो आतम राय॥४८॥

अर्थः—सिद्धांत शास्त्रना अभ्यासी लिंवडी गांमने विषे चोमासुं रहिने ए ग्रंथ रच्यो जैन्य शासनना रागी सौभाग्यवंत श्रावकनां घणां घर छे खरतरगछने विषे दिपचंद्र नामा उपाध्यायजीने प्रशादे देवचंद्र नामा उपाध्याये पोताने हर्षे करी आत्म राजाने गायो आत्म स्वरुप यथार्थ वरणवायो ॥ ४८ ॥

आत्म गुण रमण करवा अभ्यासे।
शुध्ध सत्ता रसिने उलासे॥
देवचंद्रे रची अध्यात्म गीता।
आत्म रमणि मुणि सुप्रतीत्ता॥४९॥

अर्थः—भव्य जीवने आत्मगुण रमण करवा अभ्यासे

॥ अथ अध्यात्म गीता लिख्यते ॥ दूहा ॥ इष्ट देव प्रणमी करी, आतमद्रव्य अवबोध ॥ अनंत चतुष्टयरुपमइ, गुणपर्जवनो थोज ॥१॥ द्रव्य असंख्य प्रदेश हें, प्रदेश प्रतें गुण अनंत ॥ ज्ञान दरसन सूख वीर्जगुण, गुणपर्जव अनंत ॥ २ ॥ दोय नय वेवहारिया,ः कहूंनीश्चें एक व्यवहार ॥ अन्नेद रुप नीश्चें कह्यो, न्नेद रुप व्यवहार ॥ ३ ॥ जोग प्रदिप थकि कहूं, चेतन तणो विचार ॥ अन्नेद रुप विचारतां, कथनी जोगवेवहार ॥ ४ ॥ ॥ चोपाइ ॥ जीहां लगें जंतुतुजनावे रोग, जीहां लगेंजरा तणो न संजोग ॥ जिहां लगें तुज खूटें न आय, तावत् करतुं धर्म उपाय ॥ १ ॥ धरम मारग विचार जे कह्यो, ते आगममांहेंथिलह्यो ॥ आगलकेसूं धर्म विचार, ते सांन्नलजो श्रोता सार ॥ २ ॥ हूंकीहांथुं जाईस कीहां, आव्यो हवमां किहांथी इहां ॥ ए वातपण केंसूं सत्य, सांन्नल-

जो तमे शुधकमत ॥ ३ ॥ मारो वंधव हुं कुण तणो, एहवी वात आतम प्रतें नणो ॥ ए संदेह टालीसूं जेह, सांभलजो वली चिते तेह ॥ ४ ॥ तिर्थ नावानें इछा करे, क्लेसतणा कारणनवीह रे ॥ धर्म तीर्थ सरीरमां रह्यो सर्वतीर्थथी अधिकोकह्यो ॥ ५ ॥ तीर्थ २ सोधतो तुं फिरें, छतुं तीर्थ रूदयें नवी धरें ॥ ए तीर्थ देखाडसूंजेह, ते पण आगल भणसू तेह ॥ ६ ॥ आतमपरमातम सूख एक, ध्यांनधांनमां लहीएठेक ॥ तेहसरुप केमूं मन लाय, सांभलजो मन एकेठाय ॥ ७ ॥

॥ ढाल ॥ दूहा ॥ धर्म धर्म करतो फरें, नलहे धर्मनो मर्म ॥ धर्म कारण प्रांणी हणे, दूष्ट करे ए कर्म ॥ १ ॥ कर्म करे मन हरखसुं, हरखधरे वलीनेह ॥ कुगुरु कुदेव प्रसंगथी, मीथ्यातसंगथी एह ॥ २ ॥ मीथ्यातमांरसदा, भवभमावेंतेह ॥ मिथ्यात तणी जे संगति, मूढपणावली जेह ॥ ३ ॥

ते माटे तमे धारजो, धर्म तणी जे वात ॥ धर्म ध्याने जे ध्याइया, ते जगमां विख्यात ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥ समकीत सुधुरे तेहनुं जाणीये ॥ ए देशी ॥ धर्म विना जीव चौगतिमां फिरे. मरें अनंतीरेवार ॥ जन्म जरा वलि दिनपणुं, तीहां नही दुखनोपार ॥१॥ धर्म विना०॥ आंकणी ॥ नर नवपांम्योरे कोइकजोगथी, नीचकुलेंगयो जेट ॥ धर्मविजोगेरे जगमां रडवड्यो, महादुख धरें तेह ॥ २ ॥ धर्म० ॥ काल अनंतरे मनुषगरन धरयो, गरन गल्यो वरी तेह ॥ माततणो घात तीहां कीधो वली, धर्म विजोगेरंएह ॥३॥धर्म०॥ नव नव नमतां रे, कालगयो घणो कोइक जोग संजोग ॥ अनारज खेत्रे रें ते जइउपनो, तिहां नही धर्म संजोग ॥ ४ ॥ धर्म० ॥ मरण करी जीवतिहांथी उपनो, नीचकुलें लह्यो तेह ॥तीहां सांमग्रीरे धर्मनी दोहली नीष्फल जनमज जेह

प्राणीरे जे समज्या नही, हाख्या नर भव तेह फरी नरभवडुकरछे तेहने॥धर्म विना जीवजेह ॥ १२ ॥ ध० ॥ धर्म पाखे जीवनुं सरण नही, कर तुं धर्म उपाय ॥ धर्म करंता रे धर्मप्रावी मले, धर्मे सुखीयोज थाय ।। १३ ॥ ध० ॥ एम भमतां रे कोइ प्रणामथी आव्यो आरज खेत्र, उतम कुल पाम्यां ते तीहां वलि ॥ मलोउगुरु हीत हेत ॥ १४ ॥ ध० ॥ एम करंतारे धर्मरुचि थइ, गुरु उपदेश मन लाय ॥ गुरुकहे चेतन शिक्षामांनीये, करतुं धर्म उपाय ॥ १५ ॥ ध० ॥ गुरु सुख देशना सांभली अति भली चेतन चितदी वीचार जरा व्यापे जप तप नही नीपजे रोग तनु न लगार ॥ १६ ॥ ध० ॥ गुरुउपदेसथी रंग लाग्यो सदा प्रभु दरसन मन लाय, सुद्ध परणांमे रे जीव दया करो ॥ अनुकंपाचितठाय ॥ १७ ॥ ध० तप जप करतां रे कर्म खपावतां. जोवनवय

मां रे जेह रोग नही तनु पीडावरजतां, जाग्यो धर्म सनेह ॥ १७ ॥ ध० ॥ धरमकरंतां रे परन्नवजीवने चीत न्नटक्यो मन मांह, कीहांथि आव्यारे केणें कारणे वली, हवे हुं जाइस कीहां १ए ॥ ध० ॥ कर अंजली करी गुरुने विनवे, ज्ञांनी गुरु कहे वात ॥ न्नवोन्नव भमतां रे सगपण तें कस्यां, ते अधिकार विख्यात ॥ २० ॥ ध० एह अधिकार हवे कंसु इहां, मत न्नटको मन मांह ॥ सांन्नलतां वली मन थीर राखजो कर्म तणी गत एह ॥ २१ ॥ धर्म० ॥

॥ ढाल ॥ डुहा ॥ चेतन कर्म उपाधथी, न्नवो न्नव न्नमतां जेह ॥ नरग नीगोदें ते न्नम्यो, कहे सूहवमां तेह ॥१॥ मूल स्थानकनी गोदोउ, ताहरुं घर ठे तेह ॥ कर्म संजोगे रडवड्यो, नरग गती वली जेह ॥ २ ॥ हिंसारंन्न करे घणो, नीरदे राखें मन्न ॥ रुद्र प्रणामे जे मरे, दूर गति लदे

तस मंद ॥३॥ अज्ञाने करी जे करे, नीष्फल होवे तेह ॥ जांणपणा विणुं जे क्रिया, नीगोद लहे वली एह ॥४॥ ढाल ॥ सूणो वीनती मोरी ॥ ए देशी ॥ जांणपणूं जगमांहि दोहिलुं, ज्ञान विना न जणाय रे ॥ सूणो चेतनराया ॥ आंकणी ॥ ज्ञान पदारथ मोटो कहीये ॥ तेथी जोग्यता लहीये रे, सुणो चेतनराया ॥ १ ॥ अज्ञाने करी जीव फरीयो, नारकी मांहे रडवडीयो रे ॥सूण॥ नरभव पांमी सूक्रीत नवी कीधूं, तेथी नीच पद लीधूं रे ॥ २ ॥ सूण॥ नारकीमां वहु काल अनंते, कोइ सून्न परिणामे नमंत रे ॥सूण॥ गति तिर्यंच्च योनी हूं आयो, रुपनरुप धरि आयो रे ॥ ३ ॥ ॥सूण॥ परवस पडीयो महादूखे भरीयो, भूख प्यास वहु नडीया रे ॥सूण॥ भार भरी मुने आगल करीयो, त्राड मार वस पडीयो रे ॥४॥सूण॥ बंधन बांधि खूटे जइ राख्यो, असन पांन नवी

ल तप भाव जे नणीया, ज्ञानी योग्य आदरीया
रे ॥११॥सू०॥ हवे हुं जइस सुभगति गामे, ल
ही धर्म अभिरामे रे ॥सू०॥ एम भमतां कोइक
भवमां, ज्ञान ध्यान रहे मनमां रे ॥१२॥सू०॥
ज्ञान प्रभावे जाणपणुं होवे, ज्ञानी सीव सुख
जोवे रे ॥सू०॥ ते माटे गुरु ज्ञानी कहीया, धर्म
मारग नीरवहीया रे ॥१३॥ सू०॥ नरभव पामी
सुकीत वहु कीजे, लघु काल भव छीजे रे ॥सू०
मूढपणे जे काल गमावे, नरग तीरजंच दुख पा
वे रे ॥१४॥सू०॥ ते माटे भवीज्ञान आराधो,
ज्ञान थकि सुख साधो रे ॥सू०॥ जेहथी जांणप
णुं जे लहीये कृत्य अकृत्य ग्रहीये रे ॥१५॥सू०॥
ज्ञान सहित जे क्रिया मोटि, ज्ञान रहित क्रीया
खोटिरे ॥सू०॥ ज्ञान पदारथ जगमां सार, ज्ञान
ते सकल आधाररे ॥१६॥सू०॥ ज्ञान विना जे ज
गमां भमतां, नारकी दुख सहतां रे ॥सू०॥ चौ

गति भमतां हुं इहां आयो, ज्ञान विना हुं भमा
यो रे ॥१७॥सूण॥ मानव जन्म हुं डुरलभ पायो
सुगुरु समीपे आयो रे ॥ सूण॥ सुगुरु प्रसादे हुं
इहां आयो, धर्म काजे भमायो रे ॥ १८ ॥ सूण॥
इणीपेरे कर्म वसे जे भमीयो, ज्ञानहीन रडवडी
योरे ॥ सू० ॥ सगपण कीधां संसार मोझार, ते
केसुं नीरधार रे ॥१९॥सूण॥

॥डुहा॥ जनम मरण करतां थकां, सगपण
कस्यां संसार ॥ सगपण तणे संयोगथी, पडीउ
मोह मोझार ॥१॥ मोहतणे संयोगथी, सगपण
कीधां अनंत ॥ चोरासी लक्षमां भम्यो, तोय न
आयो अंत ॥२॥ एहवी तक हवे सांभलो, थरहर
कंपे काय ॥ छेदन भेदन में सह्यां ते किहां कह्यो
न जाय ॥ ३ ॥ सगा सहोदर सवि मल्यां, की
हां कीहांथी आय ॥ हुं केहनो कुण माहरो, खी
णमां विछोहज थाय ॥४॥ ढाल ॥ नारायणानी

ए देशी ॥ सगपण कीधां में अति घणां रे, तेवी तक सुणो देव रे ॥ जिनंदराय ॥ तुझ आंणा विणुं हुं भम्यो रे, कीधी नहि तुझ सेवरे, आतमराय ॥१॥ सगपण॥ आंकणी ॥ दया धर्म जांण्या विणुं रे, दरशन देव विजोगरे ॥ जिनंदराय ॥ पाप कर्म उदये थकी रे, कीधां संसार संजोग रे ॥ जिण॥२॥स०॥ सातलाख प्रथवी भम्यो रे, जोनी जनम धरि अनेकरे॥ जिण॥ जनम मरण कीधा घणा रे, वीवीध प्रकारे अविवेक रे ॥जिण ॥३॥सण॥ अपकाय वली गती हरी रे, सातलाख माहाराजरे ॥जिण॥ तीहां दुख भोगवे एकलो रे कोई न करे मोरी साजरे ॥जि०॥४॥स०॥ तेउ कायमां हुं गयो रे धग २ ते परिणाम रे ॥जि०॥ सातलाख जोनी जण्यो रे, कीधां अशुभ परिणामरे ॥जि०॥५॥स०॥ वायुकाय थई रम्वड्यो रे, सातलाख वली जेदरे ॥ जि०॥ चलणा स्व

कष्ट ते वालरे ॥ जि०॥ १२॥ स० ॥ नारकीमांथी भोगवी रे, दुखनो नही पाररे ॥जि०॥ ग्यारला ख जोनी भम्यो रे, मरण कीधा वारो वार रे ॥ जि०॥१३॥स०॥ असूर देवनी कायमां रे, कील विषियो थयो देवरे ॥ जि० ॥ चार लाख जोनी अनुभवी रे, कर्म तणी ए टेवरे ॥जि०॥१४॥स० त्रीजंच पंचेंद्री थयो रे, रडवडीयो रण मांहे रे॥ जि०॥ जोनी चार लाख ते सही रे, सुख न पा म्यों क्यांहे रे ॥जि०॥१५॥ स०॥ महाकष्ट करी पामीयो रे, पंचभूत्त थयो देहरे ॥जि०॥ सगपण कीधां नीत नवां रे, चउदलाख जोनी तेह रे ॥ जि०॥१६॥ स०॥ सर्व संसारमें अनुभव्या रे, जीव तुं तेह संभाररे ॥जि०॥ ते सवि तें पण भो गव्यां रे, हृदयथी तेहउताररे ॥जि०॥१७॥स०॥ सर्व जोनी जइ उपनो रे, मात पीता अधिकार रे ॥जि०॥ जोनी जात सवि अनुभवी रे, कीधा

षटरस आहाररे ॥जि०॥१८॥स०॥ सर्व संजोग ते भोगव्या रे, भोगव्या रोगने सोगरे ॥ जि०॥ सुख दुख काल तें भोगव्या रे, न लह्यो धर्मनो जोगरे ॥जि०॥१९॥स०॥ अढार नातरां ते कस्यां रे, पेहेरा सवि सणगाररे ॥ जि०॥ भक्ष अभ क्ष ते अनुभव्यां रे, लीधा असूचि आहाररे ॥ जि०॥२०॥स० तीन वेदतें अनुभव्यां रे, अनुभव्या सर्व पाखंडरे ॥ जि०॥ रडवड्यो जीव मोथ्यात मां रे, पाड्या पसूगल फंदरे ॥जि०॥२१॥स०कुगुरु तणी सुणी देशनारे, दरशन किधां कुदेवरे ॥जि० धर्म विना जीव जग भम्यो रे, जाणी नही प्रभू सेवरे॥जि०॥२२॥स०चोराशी लक्ष जोनी रह्यो रे, सगपण कीधां महाराजरे ॥ जि० ॥ इम अनंता भव में कस्या रे, तें जाणे जिनराजरे ॥ जि०॥ ॥२३॥स०सगपण एक भव तणुं रे, ते कुलमां वि ख्यातरे ॥जि०॥ भवो भव सगपण बहु कस्यां रे,

त लगपवान। स। वातरे॥जि०॥२४॥स० जीवदया विणुं ते जम्यो रे, नवी पूज्या प्रजु पायरे ॥जि० दान दीधां विणुं जीवडारे, हाथ घसंता जायरे ॥जि०॥२५॥स० मूरख प्राणी ते सही रे, तीर्थ ना वा जायरे ॥जि०॥ गंगा माता करी ते पडेरे, उलटो दोष जरायरे ॥जि०॥२६॥स० तुं तीरथ जाणे न हीरे, कुगुरु तणें प्रसंगरे॥जि०॥अंतर जाव जाणे नही रे, बाह्य तीरथ जणें गंगरे ॥जि०॥२७॥स० अंतरजाव कहेस्युं हवे रे. तीरथनी जे वातरे ॥ जि०॥ जाव तीरथ जोता थकां रे, धर्म रुचि वि ख्यातरे ॥ जि०॥२८॥स०॥

॥ डुहा ॥ कुगुरु कुदेव कुसंगथी, जवोजव ज्र मीया जेह ॥ मीथ्यात तणां जे तीर्थ छे, पाप तणो घर एह ॥ १ ॥ देव देवी आरावतां, तीरथ करतां एह ॥ होम वीधांन करे घणां, पाप वधा रण तेह ॥२॥ जीव हंस्या तीहां वहु करे, चाहे

सुख अनंत ॥ जतन करावे जे नही, ते मनि न
रग पर्यंत ॥३॥ जे तीरथ हंस्या भणी, जतन ते
न करंत ॥ जाणपणा विणु जे करे, भवोभव म
रण करंत ॥४॥ एम संसार वधारणा, पाप तीर
थ करे जेह ॥ आत्म तीरथ जाण्या विणुं, कर्म
खपे नही तेह ॥ ५ ॥ सुध देवगुरु धर्म जे, धारे
चित्तमोझार ॥ ते संसारमां नवि भमे, पामे भ
वनो पार ॥ ६ ॥ ढाल ॥ चंद्रायणानी ए देशी ॥
चेतन सांभलो तीर्थ विचार, आतमकु कहे चेतना
सार ॥ बाह्य तीर्थ वहीरातम होवे, ब्रह्मरुप क
बहु नही जोवे ॥१॥ चे०॥ बाह्य द्रव्य तीर्थ जे क
ह्या, तेह तीर्थ सविये लेगया ॥ मात पीतादिक
भगनी भाई, ते तुं जाणे आप सखाइ ॥२॥चे०
पुत्र पुत्रादिक स्त्रीया सार, तन धन जोबन लहि
अपार ॥ सोछिनमे जाय नीरधार, बाह्य तीर्थ
एहवो अधिकार ॥ ३ ॥ चे०॥ नात जात समंधी

कोइ, जिहां लगे पुन्य सखाइ होई ॥ तिहां लगे जीजी करे सहु कोई, पुन्य विना सखाइ नहोई ॥४॥ चे०॥ मंदिर मोटा मेहेल मालीया, चित्राम ण स्युं गोख जालियां ॥ राज रीधी स्युं वत्र टालिया, शिरपर काल भमे आहेडियां ॥५॥ चेत०॥ मणी मांणक कंचननी कोडि, हेम हीरा रत्न बहु जोडि ॥ कोइ नकरे तस राक्नी होडी, सोहाग ए सवरीछिकु छोडी ॥६॥ चेत०॥ इंद्र इंद्रादिक म हासुर दानव, राय रांणा चलिया वली मानव॥ ए सवि आयु बले वंधाणव, धर्म तीर्थ वीना छ रगति जाणव ॥७॥ चेत०॥ एम अनेक परद्रव्य जे कहीया, इव्य कारण ए जीव हणीया ॥ तेम मोष्यादिक तीर्थ जे कहीया, घर आरंभ तेसा तिर्थ कहीया ॥८॥ चेत०॥ जीहां आरंभ ते तीर्थ नांही, षट दरशन प्रभु थोइ बताइ ॥ हिंसा करे जे तीर्थ ठरावे, हिंस्यारंभी ते छरगति जावे

सुख अनंत ॥ जगत करावे जे नही, ते नवि न रग पर्यंत ॥३॥ जे तीरथ फरस्या नथी, तुचा ते न करंत ॥ जाणपणा विणु जे करे, नवोनव भ रण करंत ॥४॥ एम संसार नथारणा, पाप तीर थ करे जेह ॥ आत्म तीरथ जाण्या विणुं, कर्म खपे नही तेह ॥ ५ ॥ सुध देवगुरु धर्म जे, धारे चित्तमोझार ॥ ते संसारमां नवि ज्रमे, पामे न वनो पार ॥ ६ ॥ ढाल ॥ चंड्रायणानी ए देशी ॥ चेतन सांज्रलो तीर्थ विचार, आत्मकु कहे चेतना सार ॥ वाह्य तीर्थ वहीरातम होवे, ब्रह्मरुप क वहु नही जोवे ॥१॥ चे०॥ वाह्य द्रव्य तीर्थ जे क ह्या, तेह तीर्थ सविये लेगया ॥ मात पीतादिक जगनी ज्राई, ते तुं जाणे आप सखाइ ॥२॥चे० पुत्र पुत्रादिक स्त्रीया सार, तन धन जोवन लहि अपार ॥ सोछिनमे जाय नीरधार, वाह्य तीर्थ एहवो अधिकार ॥ ३ ॥ चे०॥ नात जात समंधी

कोइ, जिहां लगे पुन्य सखाइ होई ॥ तिहां लगे जीजी करे सहु कोई, पुन्य विना सखाइ नहोई ॥४॥ चे०॥ मंदिर मोटा मेहेल मालीया, चित्राम ण स्युं गोख जालियां ॥ राज रीधी स्युं छत्र छा लिया, शिरपर काल भमें आहेडियां ॥५॥ चे०॥ मणी माणक कंचननी कोडि, हेम हीरा रत्न बहु जोडि ॥ कोइ नकरे तस राख्नी होडी, सोहीग ए सवरीछिकु छोडी ॥६॥ चेत०॥ इंद इंद्रादिक म हासुर दानव, राय राणा वलिया वली मानव॥ ए सवि आयु बले वंधाणाव, धर्म तीर्थ वीना दु रगति जाणाव ॥७॥ चेत०॥ एम अनेक परद्रव्य जे कहीया, द्रव्य कारण ए जीव हणैया ॥ तेम मीथ्यादिक तीर्थ जे कहीया, घर आरंभ तेसा तिर्थ लहीया ॥८॥ चेत०॥ जीहां आरंभ ते तीर्थ नांही, षट दरशन प्रभु योइ वताइ ॥ हिंसा करे ते तीर्थ नगावे, हिंस्यारंभी ते दुरगति जावे

॥९॥ चे०॥ दया धर्म जीहां तीर्थ कहीये, ते ती
र्थे करे पावन थईये ॥ जीव दया जिहां धर्म वि
चार, ए तीर्थ साचुं अधिकार ॥ १० ॥ चे० ॥ अं
तर आतम सूक्ष्म दृष्टी जोय, आतम परमातम
सम होय ॥ आत्म तीर्थ शरीरमां रह्यो; सर्व ती
र्थथी ते अधिको कह्यो ॥११॥ चे०॥ निज आतम
प्रते देखे तेह, परमातमने ध्यावे एह ॥ जाण्यो
नही जेणे नीज आतमा, तेणे गंगादिक तीर्थ
गम्या ॥ १२ ॥ चे० ॥ आतम सम उपरांत न
तीर्थ, जस नाहे हंस्या बहु कीध ॥ आत्मज्ञाने
गलित जे करे, पाप मेल छंडी गह गहे ॥ १३ ॥
चे०॥ आत्मज्ञान उत्कृष्टो धर्म, सर्व धर्ममां एह ज
मर्म ॥ विद्यामां जेम ज्ञान प्रधान, जेथी पामे
अमृत पान ॥ १४ ॥ चे०॥ दुष्कर तप तपे जे नरा
अन दुष्कर पाले आकरा ॥ आत्मज्ञान विणुं मो
क्ष न जाय, [illegible] पण [illegible] जाय॥१५॥

ण॥ समस्त रूधा तणो ए नावित, सर्व वरण वर्ण रहित ॥ एहवो आतमा जाण्यो न जेह, नुष्य जन्म हार्यो वली तह ॥१६॥ चेण॥ ध्या । एम नीज ए आतमा, आतम सोही परमा मा ॥ जे ध्यावे परमातम रुप, तेह नीरंजन स ल सरुप ॥१७॥ चण॥ बाह्य दृष्टि निश्चे करी ोय; अंतरदृष्टि उघाडीने जोय ॥ जे जोगीश्वर ोवपद रुढ, मुगति हेत जगदीश्वर गुढ ॥१८॥ ०॥ ध्यावो परमातम वली लेस, उपजे गुण ्न सेजे विशेष ॥ त्रीन् त्रीन् पणे स्वामी सा , ध्यावो नीरंजन तुम एकांत ॥१९॥ चेण॥ सू असूर चक्राधिस जेह, तेने तुं पूजे नीवड स ह ॥ दोष अढार रहित गुण धाम, तह देवने रुं प्रणाम ॥२०॥ चेण॥ पून्य पाप वरजीत व ी जेह, संसार वेली छेदन तेह ॥ सरूप एह क ो नवि जाय, प्रगट ज्ञान दरशान केवाय ॥२१

॥ चेतन॥ अनंतज्ञान कहीयें ते नित्य, नीरमल स्फटिक जेसो एकीत ॥ देवाधी देव जेसो आ तमा, स्वपर प्रकाश करे आतमा ॥२२॥ चेतन॥ सकल कर्म उपाधि रहीत, सकलज्ञान धनुर्वेद नीत ॥ उत्कृष्टो आतम ए नूप, परब्रह्मने छे ज्योती स्वरुप ॥२३॥ चेतन॥ तामसरा जस स्वा स्तिक गुणा, गंध सरसनी टालीमणा ॥ अछेद प्रमाणुं हीरो अभेद, लेप रहीत प्रभु नही तस खेद ॥२४॥ चेतन॥ ढाल पांचमी ॥

॥ अथ ॥ दुहाः ॥ ज्ञानादिक गुणसहित छे, रूपादिक ते रहित ॥ सांत दांत ते जाणीये. स- मुद्तारण नीत ॥१॥ अज्ञानी ओलखे नही, ज्ञा नी पावे पार ॥ जेमकांतादिक ज्ञानमे, वीप्रा दिक्य विचार ॥ २ ॥ जे तीर्थेहींस्या घणी, चित न धरज्यो कोय ॥ ज्ञान थकी विचारीने, ती- रथ फळ तव होइ ॥ ३ ॥ एह स्वरूपज्ञांनी कह्युं,

ीश्वे नें व्यवहार ॥ परमातमने ध्यावतां, लहे
रमातम सार ॥४॥ ज्ञानी ज्ञान विचारतां, सी
६ स्वरूपकुं धाय ॥ सिद्ध रूप जोवे सदा, सीद्ध-
रे सीद्ध समाय ॥ ५ ॥ सीद्ध स्वरूप अरूप छे,
ज्ञानी जाणे एह ॥ कांइक रुप विचारतां ज्ञानथकी
ुण गेह ॥६॥ देव निरंजन जे कह्या, दोष अढार
हित ॥ ते प्रभुने चित धारवा, करस्युं ते परतीत
॥७॥ ॥ ढाल ॥ सिद्ध चक्र पद वदो ॥ ए देशी॥
रमदेव परमातम सोहि, परम पुरुष परधांन ॥
लीन् लीन् परेसरुप वीचारो, ज्ञानध्यान समा-
नरे स्वामी भकल सरुप ए कहीइ, ए आंकणी १
द्रव्य एक पर्याय अनंता, ज्ञानस्थुल लघु कर्म
मोक्षपद चढ्यो ते स्वामी, तेह पुरूष सुधमर्मरे स्वा
मी ॥२॥ अक० ॥ चतुरमुख हुवोवलीब्रह्मा, पी-
तवस्त्र कृश्न कहीए, तपेकरी महादेव जे हुवो ॥
देव निरंजन लहियेरे स्वामी ॥ ३ ॥ अ० ॥ जैन

देव कहे जैन लोक, बुधदेव माने बोध॥नयायक मानेंकुलदेवी॥ परमातम भेद भलुघेरे स्वामी॥४॥ ॥अ० ॥ नीरमलरत्नस्फटीक बंवाकारए, रहीतनुं उपाधी न तेह, दरसन ढेदीसेछे जे थया ॥ स्वपरजाये ग्रहो जेहरे स्वामी ॥ ५ ॥ अ० ॥ एम अनेक रुप जलधर मांहे, प्रथवी जोग रस फरसे, तेम षट दरसन तणे संजोगे ॥ एक अनेक रुपधरसेरे स्वामी ॥ ६ ॥ अ० ॥ पदारथ भेदे खट दरसन हुवा, कथन मात्र कहे जुवो, एक कायवी षें इंद्रीपांचछे ॥ नाम कर्मे ए हुआरे स्वामी ॥७॥ अ० विज्ञान ममता रहीत गुण सांत, जांणें स्वयेंप्रभु ज्ञानें ॥ एहज आतम भगवान कहीए. जाणवा योग्यने मानेरे स्वामी ॥८॥ अ० ॥ उरध आकासरूप जगनाथ, चलण क्रिया गुण सहीत ॥ संसार भयथी अलगा जेछे, समस्त तेजमां सहीतरे स्वामी ॥ ए ॥ अ० केवल ज्ञाने

दाय जगता, पूरें दरसन तोहे ॥ केवल ध्याने
जाणवा येग, परमातम सवि मोहेरे स्वामी ॥
॥१०॥ अ० ॥ जेणे अनंत गुणनरीयोजे जीव;,
अनंत सुखनुं गम ॥ आतम परमातम सम जा-
णे, तेह गुण तुं पामरे स्वामी ॥ ११ ॥ अ० अं-
तर आतमा सम्यग् दृष्टी ज्ञान स्वरुपने आराधे
जोडे पोतानो आत्मा जेहथी, परमातमने सा-
धेरे स्वामी ॥ १२ ॥ अ० दोय आत्माएके छूते,
सुज्ञ ध्याने करी जोड ॥ परमातम जाने नीज
जोतां, ए परमातम छोडरे स्वामी ॥१३॥ अ० ॥
आतम सोइ परमातम कहीए, परमातम सोइ
सिद्ध ॥ वीचकी दुविधाताकि मीटगइ, प्रगट भइ
नीज रीद्धरे स्वामी ॥ १४ ॥ अ० ॥ मोहुं पासे
ते नली पेरें राज, केवल ज्ञान प्रकाश ॥ आतम
परमातम नीज पाम्यो, सूक्ष्मपरम पदवासरे स्वा-
मी ॥ १५ ॥ अ० ॥ माहरुं पद नीरंजन कहीये

सीद्ध सलाइ छेक, एहवुं ध्यान ध्याये जे नीश्चे।
अक्षय थानक विवेकरे स्वामी ॥ १६ ॥ अ० ॥
आतम परमातम जे ध्याया, अलख सरुपजे क-
हीये ॥ अव्यें अवीनासी आणंदी, वीहीन मूर-
ती ते लहीयेरे स्वामी ॥ १७ ॥ अ० ॥ ते हज
धर्म तणुं मूल कहीए, तेहज तप वीज्ञान ॥ तेह
ज पद उपर आरोपण, एहजे ध्यान प्रमाणरे स्वा-
मी ॥ १८ ॥ अ० ॥ पर पुदगल छांडीजे आत-
म परमातम गुण खांण, जोगीस्वर नित तेने
ध्यावें, करे कर्म तणी हाणरे स्वामी ॥ १९ ॥ अ० ॥
भृकुटी उपरें थापे मन जेह, तीहां थापे आतम
जेह, उतकृष्ट उतकष्टि कीया जे ॥ ते लहे सीध
सनेहरे स्वामी ॥ २० ॥ अ० ॥ पुरव पछिम मोक्ष
मारग नही, उत्तर दक्षण तेह ॥ ॐ मणि मोक्ष
मारग जे लहिये, गट अंतर रह्यो तेहरे स्वामी
॥ २१ ॥ अ० ॥ संसार त्यागी जेह आराधे, आ-

नंद रस लहेतेह ॥ सहजें साश्वतां सुख लहे जे मोक्षपंथ लहे जेहरे स्वामी ॥ २२ ॥ अ० ॥ सरीर रहित होवे तेह आतमा, श्वासो श्वासमां करतो ॥ गमना गमन निवारे ते वली, जनम मरणने हणतोरे स्वामी ॥२३॥अ०॥ स्थानक नही कोइआधार, सर्वे वस्तु उदेंकार॥जूंनूं थानक मोक्ष जे कहीये, जोगीस्वर चित धाररे स्वामी ॥२४ ॥ अ० ॥ जीहां होय वायु तणो विणास, वली जीहां चीत थीर होवे ॥ विबुध स्थानक स्वनाव जे प्रगटे, जन्म जरा नवी जोयरे स्वामी ॥२५॥ अ० ॥ चित्त वेपार थकी जे अलगा ॥ सदाज्योग्य अन्यासे, प्रगट नाव पाम्यो निज जोवें ॥ एह पद लहुं खासरे स्वामी ॥ २६ ॥ अ० ॥ पंचेंद्री विषय निवारी, हृदयथी वीषय टाली ॥ जेवारें जुनमणी नाव आव्यो, कर्म रोग तिहां वालेरे स्वामी ॥२७॥ अ० ॥ ध्याताध्येय होवे ते ध्या-

ने, ध्यातायोग वली एक ॥ ते समरसनो जाव वि-
चारो, एम गया सीद्ध अनेकरे स्वामी॥ २८॥अ०॥
॥ ढाल ६ ठी ॥

॥ दुहा ॥ सीद्ध सरुप अनुप छे, केणें लख्यो
न जाय ॥ सूत्रध्यानें जे ध्याइया, तास सरुप
लखाय ॥१॥ सीद्ध स्वरुपी जे हुवा कथन न क-
रें वली तेह, निज स्वरुप आपे लह्यो जर न जां-
णे एह॥२॥पायाज्ञनदीहुं पाइया, मुखसें कछु न
कहेत ॥ ताली लागे ध्यानकी, सो कछु लखलेत
॥ ३ ॥ ध्यान वात परमांण हे आगममें लखी
सोय ॥ आगमके अनुसार हें, गुरु कहे वली तो-
य ॥४॥ तव शीख सुणी गुरु प्रतें कहे, कृपा
करो गुरु राय ॥ ध्यान सरुप मुज वालहो, ध्या-
ता ध्येयज थाय ॥५॥ मन वचन काया एकें करी,
सुणज्यो चित लगाय ॥ वाहेरचीत मोलात्रता,
कारज सिद्ध न थायः ॥ ६ ॥

॥ ढाल ॥ चंद्र जैसा जिन राजियो मन मो-
नसेरे ॥ ए देसी ॥ सुध बचन सदगुरु कहे
सूणो सीख सोभागी, ध्यान सरुप विचार ॥सू-
णोसीख सोभागी, मनथिर एकाग्रहेकरी सूणो
सीख सोभागी सांभलो एह विस्तार ॥ सू० ॥
॥१॥ मुगो मुरख रजनी समे ॥सू०॥ सेन करी
ली तेह ॥सू०॥ सुपन लाध्युं वली तेहनें॥ सू०॥
चेंते चित्तमां जेहे ॥२॥सू० ॥ सुपनतणो भाव ते
लह्यो ॥सू०॥ मुंगे कहु न केवाय ॥सू०॥ तेम सु-
न ध्यानें जे चढया ॥सू०॥ ध्यान स्वरुप न ल-
खाय ॥३॥सू०॥ जोगी पदारथ ते लहे ॥सू०॥
ते आनंद रस माहे ॥सू०॥ परब्रह्म वीषे ते करें॥
॥सू०॥ जोगी स्वरुपतिहां पाहें ॥४॥सू०॥ परब्र-
ह्म पामें सही. परम ध्यान धरे जेह ॥सू०॥ डा-
बी जमणी नासाथी ॥सू०॥ वायुरुधण करेतेह॥
॥५॥ सू० ॥ संकल्प विकल्प छंडीने ॥सू०॥ आ-

। परिहरे ॥सु०॥ तो लये कोउं लगाइं ॥सु०१२॥
ाग द्वेष दुरे करी ॥ सु० ॥ ध्यान धीरज जव
ोइ ॥ सु० ॥ ध्याने आतमा थिर होये ॥सु० ॥
ान चपलता खोइ ॥सुण॥१३॥ धनुर्धर कोइ द्र-
ः होवे ॥ सूण ॥ वेजु वीधे तेह ॥ सुण॥ तेम ए
काग्रहे ध्यानथी ॥सुण॥ विचीत्र काम साधे जेह
॥सु०॥१४॥ राधावेद ज साधे छे ॥ सु० ॥ मन
स्थर ध्याने जेह ॥ सुण ॥ निचि नजर चक्रुहणो
॥सु०॥ ध्यान धारणा तेह ॥सु०॥ मनवस जे-
णे नवि कर्युं ॥सुण॥ ते सफल कदीये न होये ॥
॥सुण॥ शुन्य मने क्रिया करे ॥सू०॥ शुन्य मने क्री
ा खोये ॥सुण॥१६॥ तेह थकी पामे नहीं॥सुण॥
यानतणो लवलेश ॥सूण॥ पवित्रपणुं तेने नही
॥सूण॥ धरे अनंता वेश ॥सूण॥१७ ॥ जनमलगे
ात पालसे ॥ सूण ॥ ते सफल कदीये नहोय ॥
॥सूण॥सांतरस फरस्यो नही, ध्यान निष्फल तस

त्रय गुण खाणरे ॥ जोग मुगतिपद प्राप्ति का
ले, वदे हे श्री जीनभांण रे ॥ १३ ॥ गुण॥ उदयमे
छेद्यो संसाररुप जे, जोग मुगतिने जोडे रे ॥ म
न वचन काय एकत्र करीने, अशुभ कर्म तीहां त्रो
डे रे ॥ १४ ॥ गुण॥ संजमनेम आसन प्राणादीक
धारे धारणा ध्यांनरे ॥ अहिंसादिक पंच संजम
सार, नेम तणा कहुं पंच नामरे ॥ १५ ॥ गु० ॥
सौचपणे मन नीरमल कीजे, तप साधे वार भेदे
रे ॥ सर्व वस्तुपर संतोष करे जे, सम्ताय करे मन
अभेदे रे ॥ १६ ॥ गुण॥ देव तणुं संभारे ध्यान जे
नेम पंचम न आंणरे ॥ आसन पदमासन करी
साधे, सासरुंधन करी जांणरे ॥ १७ ॥ गुण॥ प्र
तिहारे इंद्री पंच रुंधे, समाधी अध्यातम साधे
रे ॥ स्थीरपणुं वहु हेते आदरे, धारणा ध्यानसु
वासे रे ॥१८॥ गु०॥ मणी अगनी तारा सुरवृंद
प्रथवी उद्योत करंतरे ॥ सहज सभावथी लय

ाजावे, घट उद्योत धरंतरे ॥१९॥ गु०॥ परमा
ः स्थानक सुख होवे, अनुभव लय लगावे रे ॥
क थकी रहे अंतर ध्याये, घट नीज आतम
वे रे ॥२०॥ गु० ॥ तेल धारानि परे अविछिन्न
॥ घंटा नादनी पेरे रे, ॐकार नाद तणी पेरेइं
ाणे, जोगीस्वर अभीन्नरे ॥२१॥ गु०॥ घंटा नाद
ड जेम होवे, समतो।श।होइ मीगो रे ॥ अनाद
नाद होय तेमघटमां, उपसांत करी दीगोरे।२२।
० ॥ वाजेवें अविकृतरुपजे, स्वप्रांणीना चित
हिरे ॥ ते नाद अनाहद कारण, वीकीत पणें
जेंताहिरे ॥२३॥ गु० स्वसरीरमां वायुपणें ना-
, नासिका मूल रहो लागीरे॥ प्रतक्ष स्वजीवप
ः ते देखे; कार्य सकल सूज जागीरे ॥२४॥गु०॥
कार धूनी रहीत वीकल्प उपजे, तरंग रहीत
मता संगे रे, चीत्र पाम्यो स्वभावें समाधिमां॥
ःहोयें चीत्रसूंरंगेरे, ॥२५ ॥गु० ॥ जावत इंद्री

॥ दुहा ॥ बाह्य अभ्यंतर जोगथी, छंडे प्र-
होय ब्रह्मद्वारे नीराकार छे, परमातम व-
ोय ॥१॥ ॥ ढाल ॥ राग धन्याश्री ॥ गुरु
गुण तमतणा ॥ ए देशी ॥ ध्यानसरुप जेम
वेये, परमातम लहेसोय चेतन॥ परममाहारस
ये ॥ जो समता चिते होय चेतन ।१। ध्यान० ॥
ांकणी एक आंगुल व्रतकारणे, आकासछे नीर
चेतन॥ तीहांथी परम योगीस्वरा, करे कार्यनी
रचेतन २ ध्या० नेत्रमंडलतणे विषे ॥ आत्म र-
नीरधार चेतन, तेह थकी जईगांमीजे, ते आ-
मनीराकारचेतन ॥३॥ ध्या० ॥ अलक नीरवं-
जे, परमातम गुण जेह चेतन ॥ द्वादश शांत
ा धानी । सदा आनंदनुं घर चेतन ॥४॥ ध्या०
ायो जोगी कषायथी, इंद्री चपल दमी तेह चे-
त परणती छंडि करी ॥ करतो सूद्ध सनेह
तन ॥ ५ ॥ ध्या० ॥ सांत रस चित थिर करी

सत्व भवलंदो जेह चेतन, पोते दृढ चीत तीहां करी ॥ ध्यान उद्यम धरी तेह चेतन ॥६॥ ध्यां० छदि संसारनो पास जे ॥ अंतरंग बल कीध चेतन, सीद्ध स्वरूप लेवा प्रतें ॥ जोत सुजोतमें लीध चेतन ॥७॥ ध्या० ॥ ब्रह्मज्ञानसुं लय करी, उपजशे केवल नांण चेतन ॥ मुगती पदारथ पांमसें, अष्ट कर्म क्षय जांण चेतन ॥८॥ ध्या० ॥ एणी परें जोग मारग रहे, अष्टांग ध्यानें जोय चेतन ॥ अतिसय सर्व ते मन आंणो, ध्यानें मंगलीक होय चेतन ॥९॥ ध्यां० सर्व संकल्प विकल्प तजी, एकांते द्दढ चीत चेतन ॥ नथी कांइ बीजुं चावना, अध्यातमहे चीत चेतन ॥१०॥ ध्या० ॥ अनादि सत्ता चेतन तणी, कर्म संगती तणी होय चेतन ॥ अंत सत्ता नव जीवने, संसार निवृत न होय चेतन ॥११॥ ध्या०॥ होय जेर सत्ता कहुं, नीश्चे एक व्यवहार चेतन ॥

अनागत होय नीश्चे सत्ता कर्मदल धनार चेतन ॥१२॥ ध्या० ॥ कर्मदल मेल्या पछी विवहार सत्ता थइ जाण चेतन, सुधनये वेवहारतां ॥ जेणो महोय नीरवाण चेतन ॥१३॥ ॥ ध्या० ॥ १३॥ को केने आधीन नहीं, जे जेम ग्रहे परथाय चेतन ॥ एणे न्नावे वर्ते सदा मुगति रमणी कहेवाय चेतन ॥ १४ ॥ एम अध्यात्म रमण करें, परमातमने ध्याय चेतन ॥ विनय विवेक वीचारीने, जोतसुं जोत मीलाय चेतन ॥ १५ ॥

॥ इति श्री अध्यातम गीता संपूर्णम् । गाथा संख्या ॥२४२॥ श्लोक ॥ ३३० ॥ श्रीरस्तुश्री ॥

॥ दुहाः ॥ स्वस्ति श्री मंदिर परम, धर्म ध्यांन सुखठांम ॥ स्यादवाद परिणांमधरि, प्रणमुं चेतन राम १ महावीर जिनवर नमी, न्नद्रबाहु सूरिस ॥ वंदि श्री जिन चंद्रगणी, श्री क्षेमेंद्र मुनीस २ सदगुरु सासन देवी नमी, वृहत्कल्प अनुसार ॥

दभाव सरुप, छए भाव एक द्रव्य परिणम्यारे, ए क समयमे अनुप ॥३॥श्रु०॥ उत्सर्ग अपवाद पदें करीरे जाणे सहु श्रुत चाल, वचन विरोध नि-वारे युक्ति रे, थापे दूखणटाल ॥४॥श्रु०॥ द्रव्या र्थिक पर्यायार्थिक धरे रें, नयगम भंग अनेक॥ न-य सामान्य विशेष ते ग्रहेरे लोको लोक विवेक ॥५॥ नंदी सूत्र उपगारी कह्योरे, वली अशचाग मी द्रव्य श्रुतनें वांद्यो गणधरे रे, भगवई अंगे-नाम ॥६॥ सु०॥ श्रुत अभ्यासें जिनपद पामी येरे, छठे अंगे साखि श्रुतनाणी केवल नाणि समो रे, पन्निवणे जे भाख ॥७॥सु०॥ श्रुत धारी आराधक सर्व तेरे, जाणे अर्थ स्वभाव, निज आतम परमा तम सम ग्रहेरे, ध्यावें ते लयदाव ॥८॥ श्रु० संयम दर्शन ते ज्ञाने वधेरे, ध्यान सिवसाधंत, भव स्व-रूप चउगतिनो लखे रे, तेणे संसार तजंत ।श्रु०। इंद्रिय सुख चंचल जाणी तजे रे, भव १ अरपत

रे जन मुढ ॥ अवसरवारे आपणो रे, सहु जननी ए रूढ रे॥१३॥प्रा०॥ सुरपति चक्री हरी वली रे, एकला परभव जाय तन धन परिजन सहु मि-ली रे कोइ सखाइ न थाय रे ॥ १४॥प्रा०॥ एक आत्मा माहरो रे नाणदंसण गुणवंत बाह्य जो-ग्य सहु अवरछे रे पाम्यो वार अनंत रे ॥ १५ ॥ प्रा० ॥ करकंडु नमीने गाइए रे डुम्मुह प्रमुख रुषी राय मृगा पुत्र हरिकेसिनारे वंडु हुं नित पायरे ॥१६॥प्रा०॥ साधु चिलाती सुत भलो रे वली अनाथी तेम इम गुण मुनी अनुमोदतां रे देवचंद सुख खेम रे ॥१७॥प्रा०॥

॥ ढाल ॥५ मी ॥ इणि परे चंचल आउखु जीव जागो रे ॥ ए देशी ॥ चेतन ए तन कारि-मो तुम ध्यावो रे शुद्ध निरंजन देव भविक तु-मे ध्यावो रे सुद्ध स्वरूप अनुप ॥भ०॥१ ॥ नर भव श्रावक कुल लह्यो ॥तु०॥ लाधो समकित

सार ॥ज०॥ जिन आगम [illegible] [illegible] ॥तु०॥ आतम तुमे निहार ॥ज०॥३॥ [illegible] [illegible]ना-
नतो ॥तु०॥ दरशण ज्ञान अनंत ॥ज०॥ आन-
म आवे थीर सदा ॥तु०॥ [illegible] [illegible] महंत ॥
॥ज०॥३॥ तीन लोक त्रिहु लोकना ॥तु०॥ परि-
णति तीन प्रकार ॥ज०॥ एक समे जाणे तिणे
॥तु०॥ नाण अनंत अपार ॥ज०॥४॥ सकलबोध
हरस्पासतो ॥तु०॥ नीरज परम अदीन ॥ ज० ॥
सुख मतनुं वंनन विना ॥तु०॥ अवगाहना स्वा-
धीन ॥ज०॥५॥ पुद्गल सकल विवेकथी ॥तु०॥
शुद्ध अमुर्त्तिरूप ॥ज०॥ इंद्री सुख निस्पृह थया ॥
॥तु०॥ अकषाय अवाद् सरूप॥ज०॥६॥ क्रयतणे
परिणामथी ॥तु०॥ अगुरु लघुत्व अनित्य ॥ज०॥
सत्य स्वभावमइ सदा ॥ तु० ॥ छोडी भाव अ-
सत्य ॥ज०॥७॥ निज गुण रमतो राम ए ॥तु॥
सकल अकल गुण खाण ॥ज०॥ परमातम पर

ज्योतिए ॥तु०॥ अलख अलेप वखाण॥ज०॥८॥
पंच पूज्यथी पूज्य ए ॥तु०॥सर्व ध्येयथी ध्येय॥
॥ज०॥ ध्याता ध्यान रुध्येय ए ॥तु०॥निश्चे एक
अभेय॥ज०॥९॥ अनुजव करतां एहनो॥तु०॥थाय
परम प्रमोद ॥ज०॥ एक रूप अज्यासथुं ॥तु०॥
शिव सुखछे तसु गोद ॥ज०॥१०॥ बंध अबंध ए
आतमा ॥तु०॥ करता अकरता एह ॥ज०॥ एह
जोगता अजोगता॥तु०॥ स्याद वाद गुण गेह॥ज०
॥११॥ एक अनेक सरूपए॥तु०॥ नित्य अनित्य
अनादि ॥ज०॥ सदा सद्भाव परिणम्या ॥तु०॥
मुक्त सकल उन्माद ॥ज०॥१२॥ तप जप कि-
रिया खय थकी॥तु०॥ अष्ट करम न विलाय॥ज॥
ते सहु आतम ध्यानथी ॥ तु० ॥ क्षीणमे खेरु
थाय ॥ज०॥१३॥ सुद्धातम अनुजव विना ।तु०।
बंध हेतु शुज चाल ॥भ०॥ आतम परणामे र-
म्या ॥तु०॥ एहज आश्रव पाल ॥ज०॥१४॥ ई

म जाणि निज आतमा ॥तु०॥ वरजि सकल उ-
पाधि ॥न०॥ उपादेइ अविलंबने ॥ तु० ॥ परम
महोदय साध ॥न०॥ १५ ॥ नरत इलासूत तेत-
ली ॥तु०॥ इत्यादिक मुनि वृंद ॥ न० ॥ आतम
ध्यानथी ए तस्या ॥ तु० ॥ प्रणमे ते देवचंद ॥
॥ न० ॥ १६ ॥

॥ ढाल ॥ ६ठी॥ शैलगशेंत्रुजे सिद्धा एदेशी।
नावना मुगति निसांणी जांणी, नावो आसक्ति
आंणीजी ॥ योग कषाय कपटनी हाणी, थाय नि-
र्मल जाणीजी ॥ना०॥ १ ॥पंच नावनाए मुनीमन
नणी, संवर खाणी वखाणीजी ॥ वृहत्कल्प सूत्र-
नी वांणी, दीठी तेम कहाणीजी ॥ना०॥ २॥ क-
र्म कतरणी शिव नीसरणी, ऊाण ठाण अनुस-
रणीजी ॥ चेतन राम तणी ए घरणी, नव समु-
द्र उख हरणीजी ॥ना०॥ ३॥ जयवंता पाठक गु-
णधारी, राज सागर सुविचारीजी ॥ निर्मल ज्ञान

घान संजारी, पाठक सहु हितकारीजी ॥ज्ञा०॥४॥ राज हंस पाठक सूपसावें, देवचंद गुण गावेजी॥ भविक जीव जे भावना भावे, तेह अमीत सुख पावेजी ॥भा०॥५॥ जेसलमेरी साहसुत्यागी, वर्द्धमान वडभागीजी ॥ पुत्र कलत्र सकल सोभागी, साधु गुणना रागीजी ॥भा०॥ ६ ॥तस आग्रह करीने भावे, ढालबंधमें गाइजी ॥ भणस्ये गुणस्ये जे ए गाशे लहस्ये ते सुख साताजी ॥ ॥भा०॥ ७ ॥ मन शुद्ध पचे भावना भावों, पावन जिन गुण गावोजी॥मन मुनीवर गुणसंग वसावो, सुख संपति गृह थावोजी ॥भा०॥८॥ इति श्री देवचंदजी कृत पंच भावना संपूर्ण ॥

म जाणि निज आतमा ॥तु०॥ [illegible] मु-
पाणि ॥न०॥ [illegible] ॥ तु० ॥ परम
महोदय लाभ ॥न०॥ १५ ॥ जगत [illegible] तन-
जी ॥तु०॥ इत्यादिक मुनि वृंद ॥ न० ॥ आतम
ध्यानथी ए तस्या ॥ तु० ॥ प्रणमे ते देवचंद ॥
॥ न० ॥ १६ ॥

॥ ढाल ॥ ६ ठी॥ शेलगशेत्रुजे सिद्धा एकेशी।
भावना मुगति निसांणी जांणी, भावो भ्रासक्ति
आंणीजी ॥ योग कषाय कपटनी हाणी, थाय नि-
र्मल जाणीजी ॥भा०॥ १॥ पंच भावनाए मुनीमन
भणी, संवर खाणी वखाणीजी ॥ वृहत्कल्प सूत्र-
नी वांणी, दीठी तेम कहाणीजी ॥भा०॥ २॥ क-
र्म कतरणी शिव नीसरणी, झाण ठाण अनुस-
रणीजी ॥ चेतन राम तणी ए घरणी, भव समु-
द्र दुख हरणीजी ॥भा०॥ ३॥ जयवंता पाठक गु-
णधारी, राज सागर सुविचारीजी ॥ निर्मल ज्ञान

घान सजारा, पाठक सहु हितकारा जी ॥ ज्ञा० ॥ ४ ॥
राज हंस पाठक सुपसायें, देवचंद गुण गावेजी ॥
भविक जीव जे भावना भावे, तेह अमीत सु-
ख पावेजी ॥ ज्ञा० ॥ ५ ॥ जेसलमेरी साहसुत्यागी,
वर्द्धमान वडभागीजी ॥ पुत्र कलत्र सकल सो-
भागी, साधु गुणाना रागीजी ॥ ज्ञा० ॥ ६ ॥ तस
आग्रह करीने भावे, ढालबंधमें गाइजी ॥ ज्ञाणस्ये
गुणस्ये जे ए गाशे लहस्ये ते सुख साताजी ॥
॥ भा० ॥ ७ ॥ मन शुद्ध पचे भावना भावों,
पावन जिन गुण गावोजी ॥ मन मुनीवर गुणसंग
वसावो, सुख संपति गृह थावोजी ॥ ज्ञा० ॥ ८ ॥ इ-
ति श्री देवचंदजी कृत पंच भावना संपूर्ण ॥

स जाणि निज आतमा ॥तु०॥ वरजि सकल उ-
पाधि ॥भ०॥ उपादेय अविलंबने ॥ तु० ॥ परम
महोदय साध ॥भ०॥ १५ ॥ भरत इलासूत तेत-
ली ॥तु०॥ इत्यादिक मुनि वृंद ॥ भ० ॥ आतम
ध्यानथी ए तस्या ॥ तु० ॥ प्रणमे ते देवचंद ॥
॥ भ० ॥ १६ ॥

॥ ढाल ॥ ६ठी॥ शैलगशेंत्रुजे सिद्धा एदेशी॥
भावना मुगति निसांणी जांणी, भावो आसक्ति
आंणीजी ॥ योग कषाय कपटनी हाणी, थाय नि-
र्मल जाणीजी ॥भा०॥ १॥ पंच भावनाए मुनीमन
भणी, संवर खाणी वखाणीजी ॥ वृहत्कल्प सूत्र-
नी वांणी, दीठी तेम कहाणीजी ॥भा०॥ २॥ क-
र्म कतरणी शिव नीसरणी, जाण ठाण अनुस-
रणीजी ॥ चेतन राम तणी ए घरणी, भव समु-
द्र दुख हरणीजी ॥भा०॥ ३॥ जयवंता पाठक गु-
धारी, राज सागर सुविचारीजी ॥ निर्मल ज्ञान

घान संजारी, पाठक सहु हितकारीजी ॥जा०॥४॥ राज हंस पाठक सुपसावें, देवचंद गुण गावेजी॥ जविक जीव जे जावना जावे, तेह अमीत सुख पावेजी ॥जा०॥५॥ जेसलमेरी साहसुत्यागी, वर्द्धमान वडभागीजी॥ पुत्र कलत्र सकल सोजागी, साधु गुणाना रागीजी ॥ जा०॥ ६ ॥ तस आग्रह करीने भावे, ढालबंधमें गाइजी ॥ जणस्ये गुणस्ये जे ए गाशे लहस्ये ते सुख साताजी ॥ ॥ भा० ॥ ७ ॥ मन शुद्ध पचे जावना जावों, पावन जिन गुण गावोजी॥मन मुनीवर गुणसंग वसावो, सुख संपति गृह थावोजी ॥जा०॥८॥ इति श्री देवचंदजी कृत पंच जावना संपूर्ण ॥

॥ अथ आलोयणछत्रीसी लीख्यते ॥

पाप आलोयनुं आपणां, गुरु आतम साखे ॥ आलोयो पाप छुटोगे, भगवंत इम भाखे ॥ पा० १ ॥ सह हैयेथी काढीजे, जिम किधां तेम ॥ दुःख देखिश नहितर घणां, रुपी लखमणा जेम ॥पा०२॥ वृद्ध गीतारथ गुरु मिले, आतमा शुद्ध किध ॥ तो आलोयण लीजिये, नहीतर शुं लीध ॥पा०३॥ ओछो अधिको देजिके, पारका ले पाप॥ लेनार छुटे नहि, सामो जागे संताप ॥ पा०४ ॥ कीधां तिम कोइ कहे नहि, जिन लखुथड जूठ ॥ कांटो भाग्यो आंगुली, खोत्रीजे अंगुठ ॥पा०५॥ गाडर प्रवाह तुं मुकजे, दूःषमकाल दूरंत ॥ आतम साखे आलोयजे, वेद ग्रंथ कहंत ॥ पा०६ ॥ करम निकाचित्त जे कर्या, तेतो भोगव्यां छुटे ॥ शिथलबंध बांध्या जिके, ते आलोयां छूटे॥पा०७॥ पृथवी पाणि आगला, वायु वनस्पति जीव ॥ ते

हनो आरंभ तुं करे, स्वाद लीधो सदीव ॥पा० ८॥
अंधो मुगो बोबडो, मृगा पुत्र ज्युं देख ॥ अंगो
पांगे तेहने, मारे लोहनी मेख ॥ पा० ९॥ बोले
नहि ते बापडो, पण पीडा होय ॥ तेहवी तीर्थं
कर कहे, आचारंगे जोय ॥पा० १०॥ आउ मूलो
आदि देइ, कंदमूल विचीत्र ॥ अनंत जीव सुइ अ
ग्रमें, पन्नवणा सूत्र ॥पा० ११॥ जिह्नने स्वाद मा
स्या जिके, तेतो मारशे तुझ ॥ भवमांहे भमतां थ
कां, थाशे जिहां तिहां झुझ॥पा० १२॥ जीभे जूठ
बोल्या घणां, दीधां कुडां कलंक ॥ गलजिभि था
शे गले, होशे महोडुं त्रिठंक ॥पा० १३॥ परधन
चोरी लूटीयां, पाड्यो ध्राशको पेट ॥ भूख्यो भ
मे संसारमां, निरधन अइ नेट ॥पा० १४॥ परस्त्री
ने तें भोगवी, तुछ स्वाद तुं लेस ॥ नरके ताति
पूतलि, आलिंगण देशे॥पा० १५॥ परिग्रहे मेल्यो
अति घणो, इछा जेम आकाश ॥ काज सरे नहि

ले फांसी दीध ॥ ते तुजने पण मारशे, मुकशे वेर लीध ॥पा० २४॥ कोक अंगिठी ते करी, ता प्यो सघडी कुंभ ॥ राते दिवो राखियो, पापे भ र्यो पिंड ॥पा० २५॥ माथि विलोड्यां वाछडां, नी रि नहि चार ॥ उनाले तरशे मूआं, किधि नहि ज सार ॥पा० २६॥ मा बापने मान्या नहि, सव शु संतोष ॥ धरमलो उपगार नवि धर्यो, उ सिंगल किम होय ॥पा० २७ ॥ आंधो टुंटो पांगु लो, कोडीयो जार चोर ॥ मरम फिटि जानि बो लवुं, कह्यां वचन कठोर ॥पा० २८॥ मधने मांस अभक्ष जे, खाधां हुंशे हुश ॥ मिछामिछक्कड दे इने, पछे लेजे व्रत ॥पा० २९॥ सामायक पोसा किया, लिया साधना वेस ॥ पण संवेग धर्यो न हि, कहि किम तुं करेश ॥ पा० ३० ॥ सूत्र प्रकर ण समजतां, कह्यां विपरित कोय ॥ जण जण म त वे जुजूआ, सुणतां भ्रम होय ॥पा०३१॥ वच

अभयदेवसूरी कृत.

॥ श्री ॥

॥ आगम अष्टोत्तरी प्रारंभः ॥

भाषारूप सार लखीए छीए.

प्रणम्य श्री महावीरं । स्वस्ति श्री वर दायकं ॥
आगम अष्टोत्तरीकां । पूर्वे बालाव बोधनि ॥१॥

सुविशाल लोयणदलं ।
विशुद्ध दंतं सुकेसरा लीढं ॥
अद्द रुढ पत्त वग्गियं ।
नविय त्नमरालि सुजिग्घंतं ॥ १ ॥

अर्थः—प्रथम बे गाथाए करी श्री अभयदेवाचार्य शिष्ट जन प्रवृत्ति राखवा मंगलाचरण पूर्वक इष्ट देव श्री वीर प्रते नमस्कार करेछे. श्री वर्द्धमान स्वामिनुं मुख कमळ छे ते मुजने वांछित अर्थ प्रत्ये आपो. ते मुख कमळ केवुं छे तो के सुविशाळ, विस्तिर्ण अने जेम कमळ पांखडीए करी शोभे छे, तेम वीरनुं मुख शोभे छे. वळी केवुं छे तो केः—जेम कमळने कर्णिका शोभे छे. तेम वीरनुं मुख शोभे छे. वळी केवुं छे तो केः—जेम

कमळनुं पत्र रक्त कांतिए करी शोभे छे, तेम वीरना रक्त होठ शोभे छे. वळी मुख कमळ केवुं छे तो केः-जेम भ्रमर कमळ उपर गुंजारव करता सुगंधि लेछे, तेम वीरना मुख कमळथी निकळेलो सुगंध रुप वाणीने भव्य जीव रुप भ्रमर हर्षवंत थया थका ग्रहण करी रह्या छे ॥ १ ॥

जस परिमल पल्लवियं ।
सुबोहियं नाण नाणं किरणोहिं ॥
महदिसउं वंछियउं ।
मुह पउमं वद्धमाणस्स ॥ २ ॥

अर्थः—वळी मुख कमळ केवुं छे तो केः-जेम कमळ नवीन पत्रनी सुगंधे करी शोभे छे, तेम वीरनुं मुख कमळ जश पत्रे करी शोभे छे. वळी मुख कमळ केवुं छे तो केः-सूर्य जेम किरणे करी शोभे छे तेम वीरनुं मुख कमळ ज्ञानरुप वाणिए करीने शोभे छे, ते मुख कमळ अमने सुख मरये थाओ ॥२॥

सिरि वद्धमाण सामी ।
समत्त गणि पिडग धारिणाइय ॥
इक्कारस्स गणधारा ।
नाम गहणेणमंसामि ॥ ३ ॥

रन्नो तण घर करणं ।
सचित्त कम्मं च गाम सामिस्स ॥
डहंपि दंड करणं ।
विवरीय तेण ज्ववणयउ ॥ ८ ॥

प्रथम द्रष्टांत विवरीने कहेछेः—

अर्थः-जेम कोइक राजा जात्रा जवा भणी उजमाळ थयो ते राजाए आज्ञा करी के अमुक गामने विषे प्रयाणनि वखते पडावनो आवास करावो, तेवारे ते दिशाए दूते जइ सर्वे लोकोने जणाव्युं. तेवारे एक गामने विषे ते गामना अधिपतिए गामना लोकोने कह्युं के मारे पण रहेवाने एक घर जोइए ते करावो, तेवारे गामना लोकोए विचार्युं जे राजा तो एक दहाडो आवी रहीने चाल्यो जशे. ते वास्ते घणुं द्रव्य खरची सुंदर घर करावववानुं शुं काम छे? एक घासनुं झुंपडुं करावी कांटानी वाडनो मोटो वाडो घेरो,त्यां राजा एक दहाडो रही चाल्यो जशे, अने आपणा गामना ठाकोरनुं निरंतर काम पडेछे, ते वास्ते राजी रहे तो सारुं माटे घणुं द्रव्य खरची नाना प्रकारनां चित्रामण सहित वे माळनो आवास मनोहर करावो. तेथी ठाकोर आपणा उपर राजी रहेशे. अने आपणने पीडशे नही. एवुं विचारीने

गामना लोके राजाने वास्ते घासनुं झुंपडुं कराव्युं. अने गामना ठाकोरने अर्थे मनोहर महेल कराव्यो. तेथी ठाकोर पण लोको उपर राजी थयो. एटलामां राजा पण प्रयाण करी ते गाममां आव्यो. राजाए गामना ठाकोरनो मनोहर आवास देखी विचार्युं जे आ गामना लोकोए मारा प्रयाणना पडाव वास्ते मनोहर आवास बनाव्यो छे. एवुं विचारीने आवासमां राजा जवा लाग्यो. तेवारे गामना लोक बोल्या, हे भगवन्! तमारो आ आवास नथी. तेवारे राजाए कह्युं के त्यारे कोनो आवास छे? तेवारे लोको बोल्या. आ तो गामना ठाकोरनो आवास छे ने आपने रहेवानो आवास तो आ घासनो बनाव्यो छे. एवां लोकनां वचन सांभळी पोतानो घासनो आवास देखी क्रोधायमान थइ गामना ठाकोरनुं गाम पडावी लीधुं. ने गामना लोकोनो मोटो दंड कर्यो.

हवे तेनो उपनय कहेछे:—

गामना ठाकोरने ठेकाणे आचार्य, अने राजाने ठेकाणे तिर्थंकर देव, ने नगरना लोकने ठेकाणे साधु प्रमुख. जेम राजानी आज्ञा खंडन करी तो ठाकोर अने गामना लोक दंड पाम्या, तेम तिर्थंकरनी आज्ञा खंडन करेतो आचार्य अने साधु बंने दंड पामे.

हवे जे मुनि नाम धरावी आगमभ्रष्ट विपरीत आचरणाए वि-

जो ते एक कोडी भव पण सुख न पामे ते कहे छे.

आगमभट्ठो मुणिवर ।

भूमि भट्ठो नरिंदवर राया ॥

मग्ग भट्ठो नवकारो ।

न लहंति कयावि या मुक्खं ॥ ९ ॥

अर्थः—आगमभ्रष्ट साधु, भूमिभ्रष्ट राजा, मंत्रभ्रष्ट नवकारिणी, ते त्रणे एक कोडी भव पण सुख न पामे एटले के जे सिद्धांतना कथन विना तप, कष्ट, क्रिया करे तोपण कंइ फलनी प्राप्ति न थाय. ॥ ९ ॥

हवे द्रव्य परंपरानी ओळखाण कहेछे.

लोयाणं ए सठिई ।

मज्जाय पज्जाय गयाय मज्जाया ॥

दव्व परंपर ठवणा ।

कुल कमं नेव मिल्हिस्सं ॥ १० ॥

अर्थः—लोकनी स्थिति कुल परंपरा प्रमुख पामीने मर्यादा ते द्रव्य परंपरा स्थापना कहिये कुल परंपराथी आवेली नहि छोडीये, ए संसारनो व्यामोह जाणवो. एटले

पोतानी कुलक्रम मर्यादा पाळे पण शुद्ध अशुद्धनी वहेंचण न करे, ते लोकस्थिति द्रव्य परंपरा जाणवी. ॥ १० ॥

हवे जे कुल परंपरानी स्थिति न छोडे ते कहेछे.

मूढाणं ए सठिइ ।
चुक्कंति जिणुत्त वयण मग्गाउ ॥
हारंति बोहिलाभं ।
आयहियं नेव जाणंति ॥ ११ ॥

अर्थः—मूर्खोनी ए पूर्वोक्त स्थिति कुल क्रमागत मर्यादा भोक्त वचन मारगथी चुकेछे. एटले जिन केवळीनां वचन मारगथी हारेछे. शुं हारेछे ? तो बोध बीज समक्त प्रत्ये ते पुरुष आत्माना हित प्रत्ये नहि जाणे. एटले जे पोते जाणतो थको पण शुद्ध अशुद्ध वहेंचण विना कुल परंपरा पाळे, पण छोडे नहि जेमके लोहवाणियानी पेरे, ते प्राणीने महा मूर्ख जाणवो. तेने बोध बीज पामवुं महा कठण छे. कदापि पाम्यो होय तोपण हारी जाय.

हवे द्रव्य भाव ए बे परंपरा लखावे छे.

दव्व परंपर वंसो ।
संजम चुक्काणं सव्व जीवाणं ॥

हवे द्रव्य परंपराने द्रष्टांत सहित असार ओळखावे छे.

वेस करंड तुल्ले हिं ।
सोवाग करंड समाणेहिं ॥
दव्व परंपर गहिआ ।
निय निय गच्छाणु राएणं ॥ १५ ॥

अर्थः—वेश्यानां आभूषण करंड सरोखा अंतरमां असार अने उपरथी देखाता चकचकाट रुप अने चंडाळना कंडिया सरखा अंतर ने बाहेर असार भूत तथाविध तेनी पेरे द्रव्य परंपरा अंगीकृत सार रहित पोत पोताना गच्छानुसार रागे स्नेहे करीने जिन आज्ञा विराधकादि दोष बहुलताथी ते द्रव्य परंपरा अशुद्ध जाणवी. पूर्व द्रष्टांतनी पेरे.

भावार्थः—वेश्यानां जे घरेणां होय ते मांहेथी कांसा, पीतळ, त्रांबानां खोटां होय. पण बाहेरथी सोना रुपा मोती सरीखां महा तेजस्वी होय तेम पासत्था तथा निन्हव बाहेरथी क्रियानो आडंबर करी सारा दिसे, पण अंतरथी गच्छ ममत्वे करी तथा पोतानी ममत्व कळाए करी असार होय अने बीजो द्रष्टांत चंडाळना कंडियानी पेठे अंतर बाहेरथी असार होय. तेम कुलिंगी वेषधारी बाहेरथी क्रिया रहित अंतरथी राग द्वेष वडे करी निज गच्छ ममत्व कदाग्रह स्था-

पन करी मुनिपणुं धरावी जिनाज्ञा विराधे ते बाहेर अंतरथी असार जाणवा. ॥ १८ ॥

हवे जे द्रव्य परंपराए रह्या पासत्था प्रमुख तेओनी करेली आचरणा तथा तेओनो व्यवहार ते भव्य प्राणीने छांडवा योग्य जाणवो ते आगमनी साखे करी कहेछे.

जंजीयम सोहिकरं ।
पासच्छ पमत्त संजयाइयं ॥
बहु एहिवि आयरियं ।
नतेण जीएण ववहारो ॥ १९ ॥

अर्थः—जो जीत अशुद्धकर आत्म शुद्धि रहित पासत्थ पार्श्व प्रमत्त संयतादि कोइ घणा जनोए पण आचर्युं तो पण नाहिं ते जीत व्यवहार कहिये.

भावार्थः—रात्रे दिवा प्रमुख करावचा, तथा मोरनां पिंछांनां डंडासण राखवां, सादडियो विछाववी, सामइया वास्ते गाम बाहेर रहेवुं शोभाने वास्ते साबुथी कपडां धोवां, तथा केश नख समारवा, तथा केशर साजीए करीने कपडा रंगवां, तथा अरिहंत विना अन्य देवनी बहु मानंता करावची; निरंतर एक ठेकाणे रहेवुं इत्यादि जे जे घणां अशुद्ध आचरणा आत्माने मलीनताकारक पासत्थादिकोए घणा

दोषपणाथी, घणा गुणे आकिर्ण, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हानि थकी सुर्लभपणे करीने अंगीकार कर्युं ते आचर्णा जीत कहीये.

भावार्थः-असठगीतार्थे आचरणा करी होय वळी जेहने सिद्धांत खंडे नहि एवी निर्दोष पाप रहित अने बीजे गीतार्थे कोइए खंडी न होय ते शुद्ध आचरणा जाणवी.॥२०॥ हवे बळ बुद्धिनुं जेमां काम न होय वलि सिद्धांतमां जेनो खुलासो होय एवा कर्त्तव्यमां गीतार्थ हेरफेर आचरणा न करे ते बे गाथाए करीने कहेछे.

आवस्सयाइ करणं ।
इच्छामिच्छाइ दस विहायरणं ॥
चिवंदण पडिलेहणं ।
संवच्छर पव्व पव्वत्तिहि ॥ २१ ॥

अर्थः-आवश्यकादिकनो करवो इच्छा मिच्छादि दसविध समाचारी तथा दसविध यतिधर्म आचरण चैत्यवंदन प्रतिलेखणा. संवच्छर पर्वतिथि. ॥ २१ ॥

उदय तिविहणं ठवणा ।
विणियाइ सुसाहु माणणा दाणं ॥

इत्थवि किं आयरणा ।
वल बुद्धि काविहावेइ ॥ २२ ॥

अर्थः–उदयतिथि नामस्थापना विनयादिक सुसाधु ओने मान देवो ए कृत्योने विषे सुआचरणा शास्त्र संमति पणाथी. वळ, बुद्धि संघयणादिकनी सुहानी ते सर्वने माननीय योग्य छे. ॥ २२ ॥

भावार्थः--आवश्यक प्रतिक्रमणादिकनुं करवुं, तथा इच्छा मिच्छादि दसविध समाचारी समाचरवी, वळी दशविध यतिधर्म आचरवो, अने चैत्यवंदन पडिलेहण संवच्छर पर्वतिथि तथा उदयतिथि स्थापना वळो विनयादिकनुं करवुं तथा सुसाधुओने बहु मान देवुं इत्यादि कर्त्तव्योमें आचरणा होय नहि, होय ते सिद्धांत पंचांगीना प्रगट पाठ पणाथो होय. ॥ २१ ॥ २२ ॥

हवे आवश्यकादि क्रिया आज्ञापूर्वक फलदायी होय ते कहेछे.

अणुयोगदार सुत्ते ।
लोगुत्तर वस्सयं जिणवरेहिं ॥
आणाए अणु चिन्नं ।
सुख फलं होइ भव्वाणं ॥ २३ ॥

अर्थः—अनुयोगद्वार सूत्रमां लोकोत्तर आवश्यक जिन
तराग देवे प्ररूप्यो आज्ञा पूर्वक आचर्यो थको मोक्षलाभ
ाी होय, भव्य जीवोने.

भावार्थः—लोकोत्तर आवश्यक जेवी रीते अनुयोगद्वार
ा आवश्यकादि सूत्रमां कह्युं छे जिन वितराग देवे, तेवी
ते आज्ञा पूर्वक विधि सहित करेतो फळदायी थाय. ॥२३॥

हवे लोकोत्तर आवश्यकादि भाव परंपरा कहेछे.

आणाए अणु चिन्ना ।
वस्सय कालंमि समण संघेहिं ।
लोउत्तरीआ ठविआ ।
परंपरा वियरागेहिं ॥ २४ ॥

अर्थः—आज्ञा पूर्वकमें समण संघे आचरो ते लोकोत्तर
ापना भाव परंपरा वीतराग देवे कही.

भावार्थः—आज्ञा पूर्वक अनुष्टान क्रिया साधु साध्वो,
ावक श्राविका आवश्यकादि कालमें स्थापन करी, ते
ोकोत्तर स्थापना भाव परंपरा वितरागे कही. ॥२४ ॥

जंकिंचि अणुठाणं ।
जिणंद आणाए बहु फलं होइ ॥

भक्ति करे, तेथी राजाए रांकने पोतानो अत्यंत प्रेमवंत भक्त जाणीने पोतानो प्रधान कर्यो. एतावता जे वचननो आराधक होय तेहने उंचो पदवी मळेज. ॥२६॥

तस्स विसव्वं न्नालिय ।
राया साहेइ सव्व देसाय ॥
अंतेउर रंगिल्लो ।
आणा नंगं न याणेइ ॥ २७ ॥

अर्थः—ते प्रधानने सर्व राज्य भाळ भळावीने राजा साधे सर्व देश प्रते ते प्रधान पण अंतेउरमां राणीयो साथे रागी थयो थको रमवा लाग्यो पण मूरख, राजानी आज्ञा भंग प्रते न जाणे.

भावार्थः-राजाए पोतानो जाणी सर्व राज्य भार सोंपी ते रांकप्रधानने राज्यनी अंतेउरनी संभाळ वास्ते राख्यो हतो ते मूरख तेहनेज वगाडतां राजानी आज्ञा खंडन थाय ते नथी जाणतो ॥ २७ ॥

कुशलेण घरं पत्तो ।
राया जाणेइ तस्स चरियाइ ॥
सुविडंवी उण सहसा ।
खंडाखंडि कउ शीग्घं ॥ २८ ॥

अर्थः—कुशानथी राजा भय पाम्यो, राजाए आव्यां ते प्रधाननां चरित्र अनेक प्रकारे, विटंबना करीने खंडाखंड कर्यो शिक्षणे.

भावार्थः--राजा देश जीती पाछो आव्यो, त्यारे ते रांकप्रधाननां खोटां लक्षण देखी क्रोधायमान थयो, अने तेने अनेक प्रकारनी विटंबना करावी. खंडोखंड करावी मार्यो.।२८।

हवे द्रष्टांतनो उपनय कहेछे.

राया तह जिण देवो ।
जह दमगो तहय होइ आयरिउ ॥
सुद्धंत समं आणा ।
अणंतसोच्छेणं लहइ ॥ २९ ॥

अर्थः—राजा जेम जीनदेव, जेम द्रुमक रांक, तेम होय आचार्य सुधतंसमं सुद्ध अंतेउर समान जिनदेव आज्ञा खंडे ते पुरुष अनंता छेदन भेदन पामे.

भावार्थः--राजा समान जीनदेव, अने रांकने ठाम ते आचार्य, वळी अंतेउर ते जिनआणा, ते जिन आज्ञा विराधक प्राणी अनंता जन्म मरण पामे. ॥ २९ ॥

हवे वळी थोडुं पण जिन आज्ञाए कर्युं अनुष्ठान पापनुं नाश करनार थाय ते कहेछे.

थोवंपि अणुठाणं । आण पहाणं करेइ पावनरं ॥
बहुनं रवि कर पसरो । दहदिशि
तिमिरं पणासेइ ॥ २० ॥

अर्थः—थोडुं पण अनुष्टान आज्ञा प्रधान करेतो पाप-
भर ते पण न्युकर्मां थाय. जेम बहु रवि सूर्यनी किरणो
प्रसरते छते दश दिशाना अंधकार प्रत्ये नाश करे.

भावार्थः—थोडुं पण जिनआणा युक्त अनुष्टान पाप
नुं नाश करे. ॥ २० ॥

अरिहं विणा न देवो । जेसिं चित्ते
विणिच्छिओ होइ ॥ तब्बयण करण चरणा
सुसाहुणो तेसिं सह गुरुणो ॥ २१ ॥

हवे आज्ञा आराधवाना उपाय बतावे छे

अर्थः—अरिहंत विना बीजो कोइ देव नथी जेन
चित्तने विषे निश्चे होय ते अरिहंतना वचनने स्थित क
चरणोथमी एवा सुसाधु तेहज गुरु मारे वांदवा योग्य.

भावार्थः—अरिहंत विना बीजा चार नीकायना
मारे वांदवा योग्य नहि; अने चरणसित्तरी करणसित

उगमवंत एवा सुसाधु गुरु ने मानी वांदवा योग्य पण कुलिंगी पासत्था जिन आज्ञा विराधक निंदक ने वांदवा योग्य नहि. ॥ ३१ ॥

हवे त्रीजो तत्त्व ओळखावेछे.

गुरु वएसो धम्मो । निमुच सिद्धंत जासोउ
होइ ॥ पवयण तहत्ति करणं ।
समत्तंविंति जग गुरुणो ॥ ३२ ॥

अर्थः-सद्गुरुए उपदेश्यो निर्दोष सिद्धांत भाषीत धर्म होय तथा प्रवचन जिनवचनने तहत् करवुं सम्यक्त्व कहे छे जगत्गुरु तिर्थंकर देवे.

भावार्थः-शुद्ध पंच महाव्रत धारक पंच इंद्रि विजीपक शुद्ध पंचांगी प्रमाणे समाचारी कारक एवा सद्गुरुना मुखनो भाष्यो धर्म तथा प्रवचन सिद्धांतना वचननुं तहत् करवुं अने सुगुरु, सुदेव, सुधर्म ए त्रण तत्त्वनुं ते रीते सद्दहवुं तेने सम्यक्त्व अरिहंत देव कहेछे. ॥ ३२ ॥
हवे जे देवने वांदे, पूजे ते देवनी आणा न माने ते प्राणी ते देवनो विराधक होय ते कहेछे.

जो पूइजाइ देवो । तव्वयणं जे नरा

विराहंति ॥ हारंति बोहि लाभं ।
कुदिट्ठि राएण अन्नाणी ॥ २३ ॥

अर्थः—जे जिनदेवने पूजे, तेनुं वचन जे पुरुष विराधे; ते पुरुष बोधबीज सम्यक्त्व प्रते मिथ्यादृष्टी राग थकी अ-ज्ञानी जाणवो.

भावार्थः--जे देवने पूजे, ते देवनी आज्ञा विराधे, ते पुरुष बोधबीज सम्यक्त्व प्रते हारे, अने जे देवने पूजीए ते देवनी आणा मानीए तो सुखदायी थाय. ॥ २३ ॥

हवे जिन वितरागनां पूजादि कृत्य करे ने तेनी आज्ञा न पाळे तेने आटलांवानां निरर्थक जाय ते कहेछे.

पूआ पच्चक्खाणं । पोसह उववास दाण
सीलाइ ॥ सव्वंपि अणुठाणं ।
निरत्थयं कणय कुसुमुव ॥ २४ ॥

अर्थः—जिनपूजा, महाव्रत, प्रमुख मूळ, उत्तरगुण प-च्चखाण अथवा पोसह पर्वतिथि अनुष्ठान, उपवास, चौ-विहार प्रमुख, दान ते मुनिने दान प्रमुख. शोळ ब्रह्मचर्य प्रमुख इत्यादि सर्व पण अनुष्ठान कर्यां थकां निरर्थक होय धंतुराना फुलनी पेरे.

भावार्थः--अंकुराने फूल देखावुं करे, पण सुगंध रहित छे. तेथी कोइने भोग उपभोगमां काम आवतुं नथी तेम पूजा, पच्चक्खाण, पोसह, तपस्या, दान, शील, भावादिक अनुष्ठान देखावमां करे पण जिनआज्ञा रूप सुगंध विना अंकुराना फूलनी परे निरर्थक जाणवां. ॥ ३४ ॥

हवे जेने आज्ञा आराधवा उपर बुद्धि नथी ते मनुष्यने गाय, हरण, वृक्ष, पत्थर, गधेडा, तरणा, अने कुतरा सरीखा जाणवा ते कहेछे.

जेसिं नआण बुद्धि । विद्या विणाण
चौरीमा सुद्धो ॥ तो गोमिअ रुख पत्थर ।
खरतिण सुणाइ सारीछं ॥ ३५ ॥

अर्थः—हवे गाय कहेछे !--जे पुरुषने जिनआज्ञा तत्वार्थ विषयिक बुद्धि नथी तेमां श्रुतज्ञान, बहोतेर कळा, चतुराइ, मनशुद्धि ए गुण पण नथी ते पुरुष, गाय, झाड, पत्थर, खर, तृण, श्वान सरीखा जाणवा.

भावार्थः--जे पुरुष अने स्त्री विद्या विज्ञान, अने चतुराइवंत छे पण जिनआज्ञा आराधवानी बुद्धि नथी ते पुरुष अने स्त्रीने गाय, झाड, पत्थर, गधेडा, कुतरा सरीखा जाणवा. ॥ ३५ ॥

हवे एवां पूर्वोक्त कविनां कठिन वचनो सांभळी
सर्व पशुओमां गाय मुख्य ते केहेछे.

मक्के सुक्क तणाइ । छद्दं अपेमि अमय
सारित्थं ॥ छगणात भूमि शुद्धि ।
लिंपण पयणाइ कज्जेसु ॥ ३६ ॥

अर्थः—गाय केहेछेः—भक्षण करुंछुं सूका तरणानुं,
आपुंछुं अमृत सरीखुं, अने मारा छाण थकी जमीन
गाय, वळी लींपवा पचाववादिक कार्यने विषे आवे.

भावार्थः--हुं सूकां तरणां भक्षण करी अमृत सरख
ध आपुंछुं अने मारुं छाण लींपण, पचन, भूमि शुद्धा
कार्यने विषे आवेछे. तो आज्ञा विराधक पुरुषने पशु
उपमा देवी केम घटे. ॥ ६६ ॥

वळी गाय केहेछेः—

पासवणं पाव हरं । बालाणां पूठि
रोग हरणंच ॥ मह उज्जात दवा ।
पित्तविकाराउ रोयणयं ॥ ३७ ॥

अर्थः—वळी गाय केहेछे. अमारो लघु नित्य, लोकनां
— अने बाळकोना दुष्ट रोग हरण करे, वळी

माराथी उत्पन्न थएलां दहीं, छाश प्रमुख, द्रव्य ते पित्तवि-
कार समावे. अने अन्नादिक पचावे.

भावार्थः—गायनुं मुत्र पाप हरे, एवुं लोकिक शास्त्रमां
कहेछे. वळी बाळकोना दुष्ट रोग मटाडे. अने गायना दुध-
मांथी उपजेलां दहीं, छाश, छाण प्रमुख द्रव्य पित्तविकार
अजीर्णादि रोग मटाडे ने राजादिक वश करे. ॥ ३७ ॥

फरी गाय कहेछे. हे कवि कुशळ! अमारा द्रव्यथी ए-
वां कार्य तथा उपकार थायछे ते कहुं ते सांभळ.

आहोडप मुहाइ । लहंतित्तिति मुएवि
मंसाउ ॥ चम्माउ पाय रक्का ।
जल नायण याइ जायंति ॥ ३८ ॥

अर्थः—आहेडि प्रमुख म्लेच्छ लोक ते पामे तृप्ति. मारा
मुवा पछी पण मारा मांस थकी, वळी चामडा थकी पगनी
रक्षा होय, अने वळी मारा चामडाथी जळना भाजनादि
वडि मसकादिक थाय.

भावार्थः—गायना मांसथी म्लेछादिकनुं पोषण तथा
चामडाथी पगनुं रक्षण, जळभाजन मसकादिक थाय. तेथी
गो शब्दथी सामान्य पशु पण जाणवा. ॥ ३८ ॥

[illegible] देवताओने प-

पूजनिक छुं ते लौकिक शास्त्रमां कह्युंछे ते तुं सांभळ.

देवा वसंति पुत्ते । विप्पाणं भूमि
भाग सुरहिउ ॥ तयमिज्जंतो एसौं ।
कइ कुशलो किं न लज्जसि ॥ ३९ ॥

अर्थः-तत्रीसकोड देवना मारे पुंछडे वसेछे, वळी हुं
बेठुं जड तिहां ब्राह्मणोने जमीननो भाग शुद्ध थाय. तो हे
कवि कुशळ? एवा एवा अमारामां गुण छतां पण आज्ञा
रहित पुरुषने मारा तुल्य उपमा देता शुं नथी लाजतो?

भावार्थः—गायना पुंछमें तेत्रीसकोड देवता रहे. त्रि-
ां घर शुद्ध थाय एवा गुण छतां आज्ञा रहित पुरुष
ुणोनो जोड केम थाय. ॥ ३९ ॥

एवां गायनां वचन सांभळयां, त्यारे कवीए आज्ञा र
त पुरुषने मृगनी उपमा दीधी. त्यारे मृग बोल्यो ते कहेछे

मृग माहः—

जाण मोगीय गुणा । मरणं अप्पेसु
कण रसीआय ॥ अइसिंगीउ वा दंता
निरक्कं पावंति जो इंदा ॥ ४० ॥

अर्थः—मृग कहेछेः--जाणीए छीए. रागना गुण

भावार्थः-रजोहरण, दांडो, पातरां प्रमुख वृक्षनां अ
यव साधुने अर्थे आवे. तथा कल्पवृक्ष प्रमुख सर्वे वनस्प
वृक्ष नामे ओळखाय छे. ॥ ४५ ॥

वळी वृक्ष कहेछेः-

वत्थासण घुसिण चंदण । चेइ कज्जेसु
रोग हरणेसु ॥ उसहि पमुहाइणं ।
किं बहु वन्नेमि अप्पणया ॥ ४६ ॥

अर्थः—वस्त्र, बेसवानुं आसन, केसर, सुखड, चैत्य
दिक कार्यने अर्थे रोगादि हरणना अर्थे औषधि प्रमुख
नस्पति विशेष शुं घणुं वर्णवीए. पोताना आत्माने पोता
मुखे पण घणा उपगारो कार्यने विषे हुं काम आवुंछुं.

भावार्थः-वस्त्र, आसन, केसर, सुखड, चैत्य कार्यम
वळी रोगादि हरवामां औषधि प्रमुख वनस्पति विशेष
त्यादि घणा कार्य उपकारमें वृक्ष काम आवेछे. ते वा
हे कवि कुशळ! आज्ञा विराधक पुरुषने मारी उपमा दे
तुं केम लाजतो नथी. ॥ ४६ ॥

एवां वृक्षनां पूर्वोक्त वचन सांभळी आज्ञा विराध
पुरुषने निर्गुणी पत्थरनी उपमा दीधी तेवारे पत्थर कहे

मत्तो जिणहर पडिमा । घर हट्ट विमा

संकलिउ ॥ उवमिज्जंतोएसिं ।

कइ कुसलो किं न लज्जेसि ॥४९॥

अर्थः—हुं पत्थर तुछमान थयो थको हरण करुं दारिद्र मने तुछमान थयो थको हुं मारुं प्राणोने प्राणयो. देवता संकलित सोवरणा थकी.

भावार्थः-देवाधिष्ठित पत्थर पारण पोष, दरिद्र इत्यादि सर्व कार्य करे. तो एटला मारामां गुण छतां पण आज्ञा रहित पुरुषने मारी उपमा देतो हे कवि कुशळ ! थुं नथी लाजतो ? ॥ ४९ ॥

एवां पूर्वोक्त वचन पत्थरथी पण आज्ञा विराधक पुरुषने निर्गुणो जाणी गधेडानो उपमा दीधो. त्यारे गधेडो कहेछे.

दिणं वहेमि भारं । सीउ उन्न सहामि

सव्वया कालं ॥ संतोषे चिठामि ।

लज्जं कारेमि आरुहणं ॥५०॥

अर्थः—दीधो वहुंछुं भार मसे शीत उष्ण सहन करुं छुं सदाकाळ संतोषमें रहुंछुं, लज्जा मते करावुं वेसनारने,

भावार्थः--गधेडो भार, शीत उष्ण सर्वकाळ सहेछे अने संतोषमां रहेछे वळी पोताना उपर वेसवावाळाने लज्जायमान करेछे. ॥५०॥

मेहुण सन्नारूढे । पासंति ममंग, माग

विहिणु ॥ तेसिं मणवंछिअ यट्ठं ।

साहेमो सव्व कालेणं ॥ ५२ ॥

अर्थः—मैथुन संज्ञारूढ थयां थको देखे मारो अंग

गपविधिना जाण तेओने मनवांछित अर्थ साधुछुं सर्वकाळ

भावार्थः—परगाम जातां गर्दभने मैथुन संज्ञाए आ

थयो थको देखे तो मनवंछित पामे. ॥ ८१ ॥

थको आज्ञा राहित पुरुषने तरणानी उपमा दीधी. त्यारे तृण कहेछे.

जे रंक ढिंक पमुहा । गिहाणि ढायंति
कुणइ जीवत्तं ॥ भख्खंताण पसूणं ।
पुठि दुद्धं च अप्पेमि ॥ ५३ ॥

अर्थः—जे रंक लोक प्रमुख घर आच्छादन करे अने आजीविका पण करे वळी तरणां भक्षण करतां पशुओने शरीर पुष्टि दुध आपुछुं.

भावार्थः--तृणाथी घर ढंकाय, पशु आदि तिर्यंच भक्षण करेतो शरीरे पुष्टि अने दुध प्रमुख पामे. ॥ ५३ ॥

वळी तरणां कहेछे.

संगामे रोसिद्धा । नहणंतितिणं
मुहम्मिमिलिताणं ॥ जायंतिय निगंथा ।
सिज्जा दंताइ सुद्धि कए ॥ ५४ ॥

अर्थः—रणसंग्राममें रोषवंत न हणे तरणां मुखमां लीधां थकां, याचे साधु सिज्जा अर्थे दांत प्रमुख शोधवाने काजे.

भावार्थः--संग्राममां मुखे तरणुं देतां थकां शत्रु पण हणे नहि. अने मुनिराज पण सिज्जा दांत शोधन अर्थे तरण याचे. ॥ ५४ ॥

अर्थः—निज निज गुण महात्म्य कहीने लजवाव्यो कविराजने? तेवारे कविराज कहेछे. आगम भ्रष्टाचारीने लहरी जलना कल्लोलनी पेरे निरर्थक जाणवा. ॥ ५८ ॥

वळी आगम भ्रष्टाचारीने उपमा देछेः—

वंझा पुत्त समाणा । भूमि सिलं धुव
गयण पुप्फ ॥ अंधग्गे वर तरुणी ।
हाव भावइ सारिछं ॥ ५९ ॥

अर्थः-वंध्यापुत्र सरीखा भूमि विवर तुल्य गगन पुष्प पेरे. आंधला आगळ वर प्रधान स्त्रीना हाव भाव सरीखा.

भावार्थः--ए पूर्वोक्त पदार्थ निरर्थक छे तेम आगमनी आज्ञा विना आचरण ते भ्रष्टाचारी निरर्थक जाणवा. ५९.

वळी आज्ञा विराधकने उपमा देछेः—

बहिराण कण जावो । वीणाए वायणं
जहा लोए ॥ तह आणा परि चत्तं ।
बहुय मविडंबग चरणं ॥ ६० ॥

अर्थः—बहेराने कर्ण जाप ते तथा बहेरानी आगळ वीणा वगाडवी ते निरर्थक तेम आज्ञा परिभ्रष्ट नरनो पं विडंबना रूप तेनुं चारित्र जाणवुं.

भावार्थः--वहेराने कर्णे जाप देवो. अथवा वहेरा आगळ वीणादि वाजित्र वगडाववां निष्फळ छे तेम आज्ञा विराधक पुरुषनुं चारित्र निष्फळ जाणवुं. ॥ ६० ॥

वळी आज्ञा भ्रष्टाचारि केवो छे ते कहेछेः--

आणा भठं चरणं । वेसा दासीण
णेह तुल्लं ॥ किंवाग फल मसारं ।
तत्ताय सीसाइअं नीरं ॥ ६१ ॥

अर्थः—आज्ञाभ्रष्ट चारीत्र, वेश्या तथा दासीना स्नेह तुल्य किंपाक फलनी पेरे असार, अथवा तप्त लोहने विषे शांतिनक्षत्रना जळनी पेरे.

भावार्थः--वेश्या तथा दासीनो स्नेह अथवा किंपाकनां फळ जेम असार अने सांतिनक्षत्रनुं पाणी तपेला लोढा उपर नांखे तो नकामुं जाय तेम आज्ञारहित चारित्र निरर्थक जाणवुं. ॥ ६१ ॥

वळी आज्ञा रहित चारित्र केवुं छे ते कहेछेः--

गय भूत कवित्थ फलं । पयंग रंगुव तह्या
मिग्ग तन्हा ॥ विणय विहुणं रुवं ।
संझारा गुव विज्जुलयं ॥ ६२ ॥

[illegible]

[illegible]

रंगने [illegible] वार न लागे तेम आज्ञा रहित [illegible]

वार न लागे. [illegible]

देखाय पण तृप्ति न थाये तेम आज्ञा रहित [illegible]

रूप तृप्ति न थाये [illegible] विनय विना [illegible], एटले घणो

घणो रूपवंत होय पण विनय विना शोभा न पामे तेम आज्ञा रहित चारित्रियो घणी क्रिया करे पण शोभा न पामे. संध्यानारागनी पेरे, संध्यानो रंग एटले जेम लीला पीळा वादळना रंगने वेरातां वार न लागे तेम आज्ञा रहित चारित्रने भ्रष्ट थतां वार न लागे. वीजळीना झबकानी पेरे, एटले जेम वीजळीनो झबकारो घणी वखत न रहे तेम आज्ञा रहित चारित्र पण घणी वखत न रहे. ॥ ६२ ॥

हवे आणा रहित धर्म केवो छे ते कहे छे.

नयण विहिणं सुमुहं ॥

रसोइआ लवण नाव बाहिरिया ॥

निइ विणा किं रज्जं ।

पिम्मं विणाण परबंधो ॥ ६३ ॥

अर्थः—नयन विना सारु मुख, रसवती लवण भाव र-

हित, निति विनानुं राज, अने प्रेम, संबंध विना न होय.

भावार्थः–आंख्यो विना जेम मुख न शोभे तेम, नाना प्रकारनी रसोइ होय पण ते मीठा विनानी, स्वादिष्ट न लागे तेम, न्याय विना राज्य शोभे नहि पण नाश पामे तेम, प्रेम विना मांहो मांहे कोइने सगाइ सगपणनो संबंध न होय, तेम आणा रहित धर्म पण न शोभे. ॥ ६३ ॥

वली आज्ञा रहित धर्म केवो छे ते कहेछेः–

लच्छि विणाण सुरकं । सोआरवि व
ज्झिमं च वरकाणं ॥ पुत्तं विणाण वंसो ।
तह आण विवज्जियो धम्मो ॥ ६४ ॥

अर्थः—लक्ष्मी विना सुख न होय, एटले धन्य धानादि लक्ष्मी विना संसारीक सुख न होय तेम आणा रूप लक्ष्मी विना जीव धर्म करे पण मोक्ष सुख न पामे. वर्जित व्याख्यान न शोभे, एटले व्याकरण, न्याय, काव्य कोसादिक चतुराइ विना व्याख्यान न शोभे तेम आणारूप चतुराइ विना धर्म न शोभे. पुत्र विना वंश न चाले एटले पुत्र विना जेम वंश न चाले तेम जिन वचन रूप पुत्र विना धर्मरुपी वंश न चाले तेमज पर्वोक्त प्रकारे जिन आज्ञा [illegible]र्थ होय

भावार्थः [illegible] ॥ [illegible] ॥

हवे जे कोइ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] तेना [illegible] निष्फळपणुं

बतावे छे.

जह कोइ मिस्सदिट्ठी । उभओ कालं
करेइ सज्झायं ॥ नालियर दिव मणुआ
अन्ने राग्ग दोसत्तं ॥ ६८ ॥

अर्थः—जेम कोइक मिश्रदृष्टि उभय काळ एटले सांज सवार सज्झाय आवश्यकादि क्रिया जेम नालियेरद्विपवासी मनुष्य तेने धान्य उपर राग पण नहि ने द्वेष पण नहि.

भावार्थः--जेम नाळीयेरद्विपमें नालियेर घणां होय तेथी त्यांना वासी मनुष्य नाळीयेरज खाय. पण अन्नना अभावथी अन्न न खाय. पण ते अन्न उपर तेओने राग द्वेष न होय. तेम कोइ प्राणी मिश्रदृष्टि थको आवश्यकादि क्रिया करे तो तेनी मिश्रक्रिया ते निष्फळ जाणवी. ॥६८॥

हवे मिश्रधर्मवाळा केवा छे ते कहेछेः -

ते डमरुव मणि तुल्ला । घंटा लालुव्वक
कच किंतणाया ॥ कुक्कर चम्म रसिलो ।
सायं न लहेइ गुसिणस्स ॥ ६ए ॥

अर्थः—ते मिश्रदृष्टी वंत डमरु डमरुणी तुल्य जाणवा उभयबंधितपणाथी एटले जेम डमरुक मणी बे तरफ बांधेलु होय तेम, मिश्रदृष्टीने विधि अविधि बे कर्मबंध कर्त्ता थाय. वळी घंटाना लोलनी पेरे एटले घंटानो लोल बे तरफ अथडाय तेम मिश्रधर्मवाळो पण बे तरफ पाछो अथडाय अने चक्रधारा समान एटले जेम चक्र करवत धाराथी बेहु तरफ कपाय तेम मिश्रधर्म विधि अविधिथी बेउ तरफ कपाय, वळी कुक्कर कहेतां श्वाननी पेरे धर्म आस्वाद रसिक स्वाद सुख न पामे रसनो. एटले जेम श्वान रसनो सुख स्वाद न पामे तेम विधि अविधिए कर्यो अनुष्टान धर्म रुप रसनो स्वाद न पामे. ॥ ६९ ॥

हवे धर्मनुं मूळ कहेछेः—

दंसण मूलो धम्मो । उवइठो जिणवरे
हिं सीसाणं ॥ तं सोउण सकन्ने ।

दंसण हीणो न वंदिअव्वो ॥ ७० ॥

अर्थः धर्मनुं मूल दर्शन एटले जेम वृक्षनुं मूल होय तो फल फूल होय तेम धर्मनुं मूल ते समकित जिन वितराग देवे शिष्योने ते सांभळी पोताना कानने विषे समकित हीन न वांदवो.

भावार्थः-धर्मनुं मूल समकित, जिन वितराग देवे उपदेश्यो ते पोताना कर्णने विषे सांभळी समकित रहितने न वांदवो. ॥ ७० ॥

हवे घणा शास्त्रो भण्यो होय तोपण सम्यक्त विना संसारमां भमे ते कहे छे:-

सम्मत्त रयण भट्ठा । जाणंता बहु वि-
हावि सत्थाइ ॥ सुध्दा राहण रहीआ ।
भमंति तत्थेव तत्थेव ॥ ७१ ॥

अर्थः-सम्यक्त रत्न भ्रष्ट एटले जिनदर्शन भ्रष्ट, जाणता थका पण बहु प्रकारनां शास्त्र जे शुद्ध आराधना आज्ञा रहित भमे त्यांनो त्यां जे संसारने विषे.

भावार्थः-अनेक प्रकारना शास्त्र भण्यो होय पण सम्यक्त आज्ञा विना संसारमें वारंवार भमे. ॥ ७१ ॥

हवे जे दर्शन भ्रष्ट होय ते ज्ञानादिकथी पण भ्रष्ट जाणवो ते कहे छे:-

जे दंसणेण भट्ठानाणे । भट्ठा चरित्त भट्ठा जे ॥ ए ए भठ विभठा । सेसंपि जणं विणासंति ॥ ७२ ॥

अर्थः-जे दर्शने करीने भ्रष्ट ते ज्ञानभ्रष्ट, चारित्रभ्रष्ट, ए एककेथी भ्रष्ट होय ते बीजा विनाश करे.

भावार्थः-जे सम्यक्तें भ्रष्ट होय ते ज्ञान, चारित्रे भ्रष्ट होय अने चारित्र भ्रष्ट होय ते दर्शन, ज्ञान, चारित्र त्रणे करी मागे भ्रष्टक होय ॥ ७२ ॥

हवे जे पोते भ्रष्ट होय ते बीजाने पण कूडो दोष लगाडे ते कहे छे.

जे केवि धम्म सीला । संजम तव नियम जोग जुत्ताय ॥ ताणं दोष भणंता । भगा भगत्तणं विंति ॥ ७३

अर्थः-जे कोइक धर्म सीलवंत, संजम, तप, नेम, जोग, जुक्त मते तेओ भले दोषवंत कहेता थका पोते भ्रष्ट थयेला

अर्थः-जेम मूळ थकी स्कंध होय वळी शाखा प्रशाखादि बहु गुण होय एटले वृक्षनुं जो मूळ होय तो स्कंध शाखा प्रतिशाखादि बहु गुणो होय तेमज जिनदर्शन मूळ कह्यो, मोक्ष मारगनो.

भावार्थः-जेम वृक्षने मूळ होय तो स्कंध शाखा प्रशाखादि बहु गुणो होय तेम धर्म वृक्षनुं मूळ सम्यक् दर्शन होय तो व्रतादिकनी वृद्धि थाय तथा मोक्ष मारगनुं मूळ जिनदर्शन जाणवुं. ॥ ७५ ॥

हवे सम्यक्त्वनुं फळ बतावे छे.

लघुणय मणु यत्तं । सहियं तह उत्त
मेण गुत्तेणं ॥ लधुणाय समत्तं ।
अखय सुखं च मुखं च ॥ ७६ ॥

अर्थः-पामीने मनुष्य भव सहीत, तेमज उत्तम गोत्रे रीने सम्यक्त्व पामीने अक्षयसुख मोक्ष प्रते पामे.

भावार्थः-सम्यक्त्वना प्रभावथी मनुष्य भव सहित त्तम जाति गोत्र पामीने संसारना परंपर सुख भोगवी क्षपद पामे. ॥ ७६ ॥

हवे जिन वचननो महिमा वर्णवे छे.

जिण वयणं उसह मिणं । विसय सुह विरे-
अणं आणत्ति नूयं ॥ जर मरण वाहि हरणं ।
खय करणं सव्व दुःखाणं ॥ ७७ ॥

अर्थः-जिन वचनरुप औषध ते विषय सुखरुप महाव्याधी तेनो विरोचक सरीखो प्रतिहत् शक्तिवंत जरा मरणरुप व्याधि हरवावाळो वळी सर्वे दुःखनो क्षयकारक.

भावार्थः-जिनवचन छे ते विषय, कषाय, जन्म, जरा, मर्णरुप समस्त दुःख हरण करवाने औषध समान छे. जेम सत्र औषधी खाधे सर्वे रोग जाय तेम जिनवचन आराधतां समस्त संसार दुखथी वेगळो थाय. ॥ ७७ ॥

अने जेने जिनवचन सांभळ्यां पण कंखा मोहनी वेगळी न थाय ते उपर कहे छे.

जिणवयणं असद्देहे । कंखा वाहि न-
फिट्टए जेसिं ॥ अमियंपि सुव्वतिसिं ।
अणं तसो लहइ मरणाइ ॥ ७८ ॥

अर्थः-जिन वचनरूप औषधे करीने कंखा व्याधि, परदर्शन अभिलाषारूप न फीटे जेहने तेहने अमृत पिवानी पें परिणमे अने अनंता पाप मरण मरे.

भावार्थः-जेम सर्पादिकने अमृत पाएलुं पण विष थइ जाय तेम परदर्शनना अभिलाषी पुरुषोने जिनवचनरुप अमृत पण विष थइ परिणमे तेथी ते अनंता जन्म मरण प्रत्ये पामे. ॥ ७८ ॥

हवे जे आगमना आचारभ्रष्टने पाळे तेनो फळ कहे छे.

समया यार ञ्नठाणं । जाणंता लज्ज गारव ञ्नएणं ॥ ते सिंपि नठि बोहिं । पावं अणुमोञ्च माणाणं ॥ ७ए ॥

अर्थः-आगम आचारभ्रष्ट जाणता थका लाजने मानने भये करीने पाळे ते प्राणीओने नथी बोध बीज पाप प्रत्यें अणुमोदता थकाने.

भावार्थः-आगम समाचारी भ्रष्टने लज्जाए करीने एटले पोतानी जातनी लाजे करी, एटले ए महारी जातनो छे ते माटे माहरा विना एनी प्रतिपालना कोण करे अथवा गौरव अभिमान करी एटले ए मारी वडाइ करे छे तेथी मारे पाळवा योग्य छे. अने भये करीने एटले मंत्र, जंत्र तथा नागइना भयथी जाणे एटले जो हुं एहनी प्रतिपाळना नहि करुं तो कांइक विरवुं कहेशे. इत्यादि जाणता थका जे आगम भ्रष्ट समाचारी चालवानी प्रतिपाळना करेछे ते प्राणीओने

तेना अनाचारनी अनुमोदना करयावाळा बोध बीज रहित जाणवा. ॥ ७९ ॥

हवे शुद्ध गच्छे वसे तेने दर्शन होय ते कहेछे.

गच्छाचारं दुविहं । तिसुवि जोए सु
संजमो गावि ॥ णाणंमि करण सुद्धे ।
अनिरकणं दंसण होइ ॥ ८० ॥

अर्थः-गच्छाचार बे प्रकारे ग्रहणा सेवनारुप मन वचन कायाए त्रिकरण योगे करीने संजम अनुष्टान प्रत्यें करे तेवारे ज्ञान, त्रिकरण शुद्धि होवा छतां निरंतर दर्शन होय.

भावार्थः-शुद्ध समाचारीनुं ग्रहण करवुं, शुद्ध विनयादिकनुं आसेवन करवे गच्छ कहेवाय. पण पंचांगी विरुद्ध आचरणाए गच्छ न कहेवाय ते पचांगी आचरण शुद्ध गच्छमें रह्यां थकां करण जोगनी शुद्धि थाय. अने करणजोग शुद्धि थयां थकां निरंतर प्राणीने दर्शनशुद्धि थाय. ॥ ८० ॥

हवे सद्दणारुप व्यवहारादि सम्यक्त्व लक्षण कहेछे.

जीवाइ सद्दहणं । समत्तं जिणवरे
हिं पन्नत्तं ॥ ववहार निच्छएणं ।
जाणंतो लहइ समत्तं ॥ ८१ ॥

अर्थ-जीवादिक नव पदार्थ तेनो श्रधानरुप सम्यक्त्व सामान्य केवलीना प्रधान तिर्थकर देवे प्ररुप्यो व्यवहार निश्चे थकी जाणतो थको प्राणी पावे सम्यक्त्व प्रते.

भावार्थः-जिन भाषित जीवादि नव पदार्थ तेने व्यवहार निश्चे सहित सद्दहतो सम्यक्त्व पामे. ॥ ८१ ॥

हवे मोक्षनुं प्रथम पगथीयुं बतावेछे.

जिण पन्नत्तं धम्मं । सद्दह माणस्स होइ
रयण मिणं ॥ सारंगुण रयणाणय ।
सो वाणं पढम मोक्खस ॥ ८२ ॥

अर्थः-जिन प्ररुप्यो धर्म ते प्रते सद्दहता थकां होय सम्यक्त्वरुप रत्नसार भूत गुण रत्नाकरनें अने ते सोपान एटले पगथीयुं प्रथम मोक्षरुप जवाने.

भावार्थः-जिन वितरागना प्ररुप्या धर्मनी जेने श्रद्धा होय ते प्राणी सम्यक्त रत्नरुप मोक्ष प्रसादनुं प्रथम पगथीयुं पामे. ॥ ८२ ॥

हवे वांदवा योग्य पुरुष बतावेछे.

दंसणणाण चरित्ते । तव नियमे विणय
खंति गुण इल्ला ॥ ए एवि वंदणीया ।
जे गणवाड गणधराणं ॥ ८३ ॥

तेना अनाचारनी अनुमोदना करवावाळा बोध बीज रहित जाणवा. ॥ ७९ ॥

हवे शुद्ध गच्छे वसे तेने दर्शन होय ते कहेछे.

गच्छाचारं दुविहं । तिसुवि जोए सु संजमो ठावि ॥ णाणंमि करण सुद्धे । अनिरकणं दंसण होइ ॥ ८० ॥

अर्थः-गच्छाचार बे प्रकारे ग्रहणा सेवनारुप मन वचन कायाए त्रिकरण योगे करीने संजम अनुष्टान प्रत्यें करे ते वारे ज्ञान, त्रिकरण शुद्धि होवा छत्तां निरंतर दर्शन होय.

भावार्थः-शुद्ध समाचारीनुं ग्रहण करवुं, शुद्ध विनयादिकनुं आसेवन करवे गच्छ कहेवाय. पण पंचांगी विरुद्ध आचरणाए गच्छ न कहेवाय ते पचांगी आचरण शुद्ध गच्छमां रह्यां थकां करण जोगनी शुद्धि थाय. अने करणजोग शुद्धि थयां थकां निरंतर प्राणीने दर्शनशुद्धि थाय. ॥ ८० ॥

हवे सद्दणारुप व्यवहारादि सम्यक्त्व लक्षण कहेछे.

जीवाइ सद्दहणं । समत्तं जिणवरेहिं पन्नत्तं ॥ ववहार निच्छएणं । जाणंतो सद्दइ समत्तं ॥ ८१ ॥

अर्थः-जीवादिक नव पदार्थ तेनो श्रधानरुप सम्यक्त्व सामान्य केवळीना प्रधान तिर्थंकर देवे प्ररुप्यो व्यवहार निश्चे थकी जाणतो थको प्राणी पामे सम्यक्त्व प्रते.

भावार्थः-जिन भापित जीवादि नव पदार्थ तेने व्यवहार निश्चे सहित सद्दहतो सम्यक्त्व पामे. ॥ ८१ ॥

हवे मोक्षनुं प्रथम पगथीयुं बतावेछे.

जिण पन्नत्तं धम्मं । सद्दह माणस्स होइ रयण मिणं ॥ सारंगुण रयणाणय । सो वाणं पढम मोक्खस ॥ ८२ ॥

अर्थः-जिन प्ररुप्यो धर्म ते प्रते सद्दहता थकां होय सम्यक्त्वरुप रत्नसार भुत गुण रत्नाकरने अने ते सोपान एटले पगथीयुं प्रथम मोक्षरुप जवाने.

भावार्थः-जिन वितरागना प्ररुप्या धर्मनी जेने श्रद्धा होय ते प्राणी सम्यक्त रत्नरुप मोक्ष प्रसादनुं प्रथम पगथीयुं पामे. ॥ ८२ ॥

हवे वांदवा योग्य पुरुप बतावेछे.

दंसणणाण चरित्ते । तव नियमे विणय खंति गण इल्ला ॥ ए एवि वंदणीया ।

अर्थः-दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपोविनय, तेम वळी नि
त्य क्षमादि गुणोमां प्रवर्तमान ते गुणना बोलनारा
गणधर महाराजना.

भावार्थः-दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनयादिकना पा
लनारा तेमज गणधरादिकोना गुण ग्राम बोलनारा जा
णवा अने तेमज जिनशासनमां वांदवा योग्य समजवा. अने
जे पासत्थादिक गच्छ ममत्व कदाग्रही छे ते तप, नेम चा
रित्रनी निंदाकारक गणधरादिकोना अवर्णवाद बोलना
वाला जाणवा. ॥ ८३ ॥

हवे जे आज्ञायुक्त संजत उपर मच्छर धरे तेने मिथ्यादृष्टि
जाणवो ते कहेछे.

आणाजुत्तं संघं । दट्ठुं जो मत्र एणा
मच्छरिज्ज ॥ सो संजम पडिवन्नो ।
मिच्छादिट्ठि मुणेयव्वो ॥ ८४ ॥

अर्थः-आज्ञायुक्त संघ प्रत्यें देखीने जे प्राणी माने नही
मच्छर अभिमान थकी ते संजम प्रतिपन्न एटले संजमवान् पण
मिथ्यादृष्टि जाणवो.

भावार्थः-जे प्राणी सिद्धांत पंचांगी प्रमाणे आज्ञायुक्त
समाचारी करवावाळा तेओने गच्छ ममत्व कदाग्रह कहे के

एतो नवा छे अने ढंढ परंपराना छीए. पंचांगी प्रमाणे स-माचारी तो पूर्वे हती, हमणां तो गच्छ ममत्व परंपराए चाले ते संघ एवुं कही लोकोने भमावे अने आज्ञायुक्त संघने न माने वली ते उपर, मच्छर, अभिमान द्वेष करे, ते संजम पालनायका पण मिथ्यादृष्टि जाणवा. ॥ ८४ ॥

हवे जे पंचांगी प्रमाणे आज्ञायुक्त साधुने देखी संताप धरे तेनुं फल कहेछे.

अमराण वंदियाणं । रुवं दठुण जे-
सि मणतावो ॥ सो संतावो तेसिं ।
भवेभवे रहोअणंत गुणो ॥ ८५ ॥

अर्थः-देवताओने वंदवा योग्य एवा साधु मुनिराजोना रुप प्रते देखीने जेना मनने संताप होय, ते संताप ते प्राणी ते भवे भवने विषे होय अनंतगुणो.

भावार्थः—आज्ञायुक्त मुनिने देखीने जे प्राणीने संताप उपजे ते प्राणी ते संतापनो फल भवोभव अनंतीवार भोगवे एटले संसार अनंतो करे. ॥ ८५ ॥

हवे जे आगम प्रमाणे आचारमें वर्त्तता गारव करे तेनुं फल कहे छे.

आगम माय रणाणं । सच्चु वएसे

सढ्ढा [illegible] ॥ [illegible] ।
सम्मत्त [illegible] ॥ ८६ ॥

अर्थः [illegible]

भावार्थः आगम प्रमाणे भावार्थने [illegible] श्रद्धा [illegible] उपदेशक एटले आगम प्रमाणे जेणे सिद्धांतने कर्युं छे तेणे पण लोक कल्याण तथा गच्छ प्रधान तथा पोतानी पूजा मानना वधारवाने अर्थे आगम विपरीत न वर्ते तेओना उपर जे प्राणि मत्सर अभिमान तथा द्वेषादि करे तो ते प्राणी सम्यक्त वर्जित होय, एटले सम्यक्तनो नाश करे. ॥ ८६ ॥

हवे मोक्षनां कारण बतावेछे.

नाणेणं दंसणेणय । तवेण संवरेण
संजम गुणेण ॥ चउएहंपि समाउगे ।
मुखोदिं जिणेहिं पन्नत्तो ॥ ८७ ॥

अर्थः-ज्ञानेकरीने, दर्शन सम्यकत्वे करीने, तपेकरीने, संवरे करीने, संजमोपकार मूलगुणे करीने, च्यारोना समायोग, एटले मेलापे, मोक्ष वितराग देवे प्ररूप्यो.

भावार्थः-ज्ञान, दर्शन, तप, संवर, ए च्यार गुणना मे-ळापे संजमगुण होय ने संजमवंत प्राणीने मोक्ष होय पण ए-कला श्रुतवाळाने मोक्ष न होय. ॥ ८७ ॥

हवे जात्यादि वांदवा योग्य छे के गुण वांदवा योग्य छे ते उपर कहे छे.

नइ देहं वंदि जइ । न जाइ कुल रुव
वण रुवंच ॥ गुण हीणं को वंदे ।
समणां वासा वयं वावि ॥ ८८ ॥

अर्थः-नहि, देह शरीर वांदवा योग्य कारण के सर्व प्राणी मात्रने देह छे. नहि जातिमां नृपक्ष वांदवा योग्य, कारण के सर्व जीवोने जातिछे. पीतापक्ष ते कुळ ते पण वांदवा योग्य नथी कारण के सर्व प्राणीओमां पांचे वर्ण छे. रुप ते पण वां-दवा योग्य नथी एटले सर्व जीवोमें पुन्य प्रकृतिए करी रुप लाधे छे. पण देहादिक गुणहिण कोण पुरख वांदे ? साधुने अथवा श्रावकने पण एटले नाम साधु तथा नाम श्रावक नहि देहि नाम साधु नाम श्रावकनी जाति नाम साधु नाम श्रावकनो कुळ नाम साधु नाम श्रावकना वर्णरुप ते गुणहिण वांदवा योग्य नथी गुण सहित वांदवा योग्य छे.

भावार्थः-तेओमां साधु श्रावकना गुण होय तो वांदवा

हवे कोइना पण अवर्णवाद न बोलवा पण पांचना अपवाद
तो अवश्य वर्जवा ते कहे छे.

ठाणआंगे जणियं । पंच एह मवण
वाय बहुलेण ॥ दुल्लह बोहिय जावं।
लहंति जिवाय णिच्चंपि ॥ १०९ ॥

अर्थः–श्री ठाणांगजीने विषे कह्युं छे. पांचना अवर्ण-
द वहुलपणाए करीने दुर्लभ बोधी भाव प्रते पामे जीव
रंतर.

भावार्थः–अरिहंत केवळी प्ररूप्यो धर्म अने सूत्र सिद्धांत
ठी चतुर्विध संघ अने ब्रह्मचर्य पाळीने जे देव थया, ए
चेना अवर्णवाद बोले ते जीव दुर्लभ बोधीपणुं पामे.॥
हवे ए पांचना सुवर्णवाद बोलतो जीव सुलभ बोधी थाय
ते कहे छे.

एसिं सुवन्न वाए । जीवा पावंति सुल-
ह बोहित्तं ॥ जह मग हाहिव कएहुइ ।
एहिं लद्धं खूसम्मत्तं ॥ ११० ॥

अर्थः–पूर्वोक्त पांचेना भला गुण बोलवे करी जीव पामे
र्लभ बोधिपणुं जेम मगध देशनो अधिपति श्रेणिक राजा
। कृष्ण वासुदेव आदे दइने ए पाम्या.क्षायक सम्यक्त प्रते.

भावार्थः-श्रेणिक, कृष्ण, प्रमुख महावीर तथा नेमनाथ स्वामीनी वंदन पूजन स्तुति करी क्षायक सम्यक्त पामी तिर्थंकर गोत्र बांध्यो ए कथा आगळ कहेशे. ॥११०॥

हवे धर्म, पापनां प्रभाव दृष्टांते करी बतावे छे.

धम्मा जयंतु वंतो । ललि अंग कुमर रुव लहइ बोहि फलं ॥ बहुवि तरवा लिइ विहु । भीम कुमा रुव जायंति ॥ १११ ॥

अर्थः-धर्म थकी जय होय निश्चे करीने ललितांग कुमारनी पेरे पामे बोध बीज फळ प्रते. अने पापना प्रभावथी बहुल संसार परिभ्रमणथी वळ्यो थको पण भीमकुमारनी पेरे. संसारमां जन्मे.

भावार्थः-धर्मना अवर्णवाद न बोलवे करी ललितांग कुमरनी पेरे, बोध बीज पामे. अने धर्मना अवर्णवाद बोलवे करीने भीमकुमारनी पेरे संसार वधारे. ॥ १११ ॥

हवे सत्व, सुमता उपर दृष्टांत कहे छे.

धम्मिल्ल दाम नण इया । सत्तेण अगड दत्त नरवइणो ॥ समया एव वदंतो । मुणि वइ मे यारिज जाण ॥ ११२ ॥

॥ १ ॥ जेसे ज्वरके जोरसें, भोजनकी रुची जाय॥ तेसेकु कर्मके उदे, धर्म वचन न सोहाय ॥ २ ॥ लागे भूख ज्वरके गये, रूचीशुं लेइ आहार ॥ अशुभ मिटे शुभके जगे, जाणे धर्म विचार॥ ३॥ जेसे पवन झकोरते, जलमें उठे तरंग ॥ तौ मनसा चंचल भइ, परिग्रहके परसंग ॥ ४ ॥ जहां योन नहि संचरे, तहां न जल कल्लोल ॥ तौ सब परिग्रहकुं तजे, मनसा होए अडोल ॥५॥ जो काहु विषघर डसें, रूचीसो नीबचवाय ॥ तौ तुंममताशुं मढे, मगन विषय सुख पाय ॥६॥ निबरसन परसे नहि, निरविष तन जब होय ॥ मोह घटे ममता मिटे, विषय न वंछे कोय ॥७॥ ज्यों नौका छिद्र चढे, बुडे अंध अदेख ॥ तौ तुम भवजलमें पडे, वीन विवेक घरी भेखे ॥ ८ ॥ जहां अखंडीत गुण लगे, खेवट शुद्ध विचार ॥ आतम रुची नौका चढे, पावहु भवजल पार॥ ९॥

ये, शुद्ध कनक ज्यो होय॥त्यौ परगट परमातमा पुन्य पाप मल खोय ॥ १८॥ परव राहुके गहन सौ, सुर सोम छवि छीन ॥ संगती पाय कुसाधुकी, संजत होत मलीन ॥१९॥ नींवादिक चंदन जए, मलयाचलकी वास॥दुरजन ते सज्जन भये, रहेत साधुके पास ॥२०॥ जैसै ताल सदा भरे, जल आवे चिहु ओर ॥ तैसै आश्रव द्वार सो, कर्म वंधकौ जोर ॥ २१ ॥ ज्युं जल आवत मुदी यै, सुकै सरवर पान ॥ तैसै संवरके कीयै, कर्म नीर्जरा जान ॥२२॥ ज्यौ वुटी संयोग ते, पारा मुर्छित होय॥ त्यौ पुदगल सौ तुम मिले, आतम शक्ति समोय ॥२३॥ मेली खटाइ मांजीये, पारा परगट रुप ॥ शुकल ध्यान अभ्यास ते, दरशन ज्ञान अनुप ॥२४॥ कहि उपदेश वनारशी, चेतन अव कछु चेत ॥ आयु वुझावत आयुकौ, उदै करण के हेत ॥२५॥ इति॥

॥ श्री ॥

॥ चउसरण पयन्नो ॥

॥ श्री वित्तरागाय नमः ॥

परम पद प्राप्तिनो बीज भूत माटे ए चउस रण अध्ययन कल्याण भूत छे. एहना प्रारंभने विषे त्रण मंगळ छे. पहेलो भाव मंगळ सामाय कादिक छे. आवश्यकनो अर्थ वखाणवा रुप॥१॥

बीजुंः—भाव मंगळनो कारण द्रव्य मंगळ ग जादिक चउद स्वप्न तिर्थंकरनी माता देखे ते जेनो उच्चार करवाथी सर्वे जिनगुण स्मरण थाय.॥२॥

त्रीजुंः—वर्त्तमान शासनपति श्री वर्द्धमान भ गवंतने नमस्कार करवा रुप मंगळ. ॥३॥

ए त्रण मंगळ एमांथी प्रथम मंगळ खडाव श्यक छे. ते कहेछे. अथवा सामायकादिक खडा वश्यके करी संयुक्त जे होय ते भाये चउसरण

ते प्रत्यांख्यान आवश्यके करीए. निश्चें ॥१॥

हवे कांइक विशेष थकी ए सामायकादिक छ आवश्यकनो स्वरुप, अने चारित्र विशुद्धादिक रुप फळ कहीए छीये.

चारित्तस्स विसोही, कीरइ सामाइएण किल इहयं ॥ सावज्जे यर जोगाणं, वज्जणा सेवणात्तणाउ ॥ १ ॥

अर्थः—समता भाव रुप सामायक तेणे पांच सुमति त्रण गुप्ति ए अष्टवीध चारित्राचार, तेनी विशुद्ध निर्मळता करीए छीए.

केवीरीते करीए तो केः—सावद्य इतर निरवद्य जोग व्यापार तेना वर्जवा थकी, आसेवना थकी, एटले सावद्य व्यापार वर्जवे करीने निरवद्य पाप रहित व्यापारने आदरवे करी निश्चे इहं जिन शासनने विषे सामायक छे पण अन्य दर्शनने विषे नथी. ॥ २ ॥

चारित्राचारनी शुद्धि कही. हवे दर्शनाचारनी
शुद्धि कहीए छीए.

दंसण यार विसोही, चउवीसायथ्थए
ण किज्जइ अ ॥ अच्च भूव गुण कित्तेण,
रुवेणं जिण वरिंदाणं ॥ ३ ॥

अर्थः-जिन वरिंदनो अति अद्भुत लोगस्स उ
ज्जोअगरे इत्यादि गुणोत्किर्त्तन रुप चोवीस ती
र्थंकरोनो स्तवन तेणे निःसंकीतादिक अष्टविध
दर्शनाचारनी विशुद्धि निमळता करीए छीए ॥३॥

हवे दर्शनाचारनी शुद्धि कही हवे ज्ञानाचारादि
कनी शुद्धि कहीए छीए.

नाणा इआइ गुणा, तस्संपन्न पडिव
त्ति करणाउ ॥ वंदण एणं विहिणा,
किरइ सोहीअ तेसिंतु ॥ ४ ॥

अर्थः-निश्चे ज्ञानादिक एटले ज्ञान दर्शन चा

रित्र जे गुणछे ते गुणोए करी सहित गुरुनी
डिपत्ति सेवा भक्ति करवा थकी विधिए करी
एटले वांदणाना बत्रीस दोष छे ते दुर करीने अ
वांदणाना पचीस आवश्यक छे ते अंगीकार क
रीन वंदणावश्यके ते काळ विनयादि अष्टविध ज्ञ
नाचारादिकनी शुद्धि निर्मळता करीए छीए ॥४॥
ज्ञानाचारनी शुद्धि कही. हवे व्रत संबंधि तथ

ज्ञानादिक संबंधि अतिचारनी

शुद्धि कहीए छीए.

खलिअस्सय तेसिं पुणो, विहिणा जं
निंदणाइ पडिकमणं ॥ तेणं पडिक्कमणेणं,
तेसिंपिए कीरये सोही ॥ ५ ॥

अर्थः—व्रत संबंधी अतिक्रम व्यतिक्रमादि
क अपराधनी वळी ते ज्ञानादिकनी विधिये करी
एटले सिद्धांतने अनुसारे जे निंदा गर्हादिक कर
ते प्रतिक्रमण कहीए. ते रुप जे प्रतिक्रमण छे

व्रत संबंधि अतिचारनी ते ज्ञानाचारादिकनी वि शुद्धि करीए छीए. ॥ ५ ॥

हवे पडिकमणुं करतां थाकता रह्या जे अतिचार दुर करवाने अर्थे कहीए छीए.

चरणा इआ इआणं, जहक्कम्मंवणचि गिच्छ रुवेणं ॥ पडिकमणा सुद्धाणं. सोही तह काउसग्गेणं ॥ ६ ॥

अर्थः—आलोयणा पडिकमणादिक दशविध प्रायश्चितने विषे यथाक्रमे अनुक्रमे गणातां पांचमो प्रायश्चित छे. एवो अतिचार नाव वर्ण चांदोत दुर करवाने औषधरुप एवो तथा प्रकारनो काउस्सग आवश्यक पडिकमणु करतां अशुद्ध अथवा अर्थ अशुद्ध रहेला एवा चरणातिगादि तेनी एटले चारित्र संबंधि अतिचारादिक कहीए ते आदे देइ सर्वे अतिचार तेनी शुद्धि निर्मळता करीए छीए ॥ ६ ॥

हवे तपाचार अने विर्याचारनी शुद्धि कहीएछीए.

गुण धारण रुवेणं, पच्चक्काणेण तव
इआरस्स ॥ विरिआ यारस्स पुणो,
सवेहि विकीरए सोही ॥ ७ ॥

अर्थः—विरति प्रमुख गुणोनी धारणा रुप एटले उत्तरोत्तर प्रधानथी प्रधान गुणोनी धारणा ते रुप दस विध पच्चख्काण अथवा सत्तावीस प्रकारे पच्चख्काण छे तेणे द्वादशविध तप संबंधी अतिचारनी वळी पंचविध विर्याचार संबंधी अतिचरनी सर्वे आवश्यके पण एटले सामायकादिक छ आवश्यके करी शुद्धि करीएछीए. ॥ ७ ॥

विरति थकी आश्रव निरोध थायछे ने आश्रव निरोध थकी तृष्णानो उच्छेद थाय छे ते थकी अतुल्य उपसम, ते थकी प्रत्याख्यान शुद्धि, ते थकी चारित्र निर्मळता, ते थकी कर्म विवेक, ते थकी अपूर्व करण, ते थकी केवळ ज्ञान, ते थकी मोक्ष.

एने उत्तरोत्तर गुण कहीए.

अणागय मइकत्तं इत्यादि दशविध प्रत्याख्यान छे. ते प्रत्याख्यान भाष्यमांहि जाणवुं एवं सत्तावीश विर्याचार पंचविधी १ तपवीर्य २ गुणवीर्य, ३ चारित्र वीर्य, ४ समाधिवीर्य, ने ५ आत्मवीर्य. इत्यादि

हवे मंगळ रुप गजादिक चउद स्वप्न कहीएछीए

गयवस सीह, अभिसेय दाम ससि
दिणयरं जय कुंभ ॥ पउमसर सागर
विमाण, भवण रयणुच्चय सिहिंच ॥८॥

अर्थः—१ गज-हाथी, २ वृषभ-बेल, ३ सिंह. ४ अभिषेक करती देवी ५ पुष्पनी माळा. ६ चंद्रमा ७ सूर्य ८ ध्वज ए कुंभ १० पद्मसरोवर ११ खीर समुद्र १२ देवलोकथकी तिर्थंकर अवतरवानी अपेक्षाए विमान अने नरकथकी तिर्थंकर आववानी अपेक्षाए भवन जाणवुं अने १३ रत्ननो ढगलो अने

१४ निर्धूम अग्नि ए चउद स्वप्न प्रते तिर्थंकरनी माता देखे अति निर्मळ जिन गुण स्मरणना कारण मंगळरुप चउद स्वप्न कह्यां ॥ ८ ॥

हवे शासन पति महावीर स्वामिने नमस्कार करी चउसरण अध्ययन प्रत्ये कहीए छीए.

अमरिंद नरिंद मुणिंद, वंदिअं
वंदिउ महावीरं॥ कुसलाणुबंधिबंधुर,
मज्झयणं कित्तइस्सामि ॥ ९ ॥

अर्थः—चोवीसमा तिर्थंकर श्रीमहावीर प्रते ंदीने चउसरण अध्ययन प्रत हुं स्तवीश. ते म ावीर केवा छे तोकेः—देवेन्द्रोए, नरिंद्रोए, मुनेंद्रो वांदेला. केवो ते अध्ययन छे तो केः-मोक्षप्रते रंपराए करी देणणहार, वळी ते अध्ययन मनो रछे सर्व जीवना उपर उपकार करवा माटे ॥९॥
वे ए अध्ययन विषे त्रण अधिकारछे ते कहे छे.

चउसरण गमण दुक्कड, गरिहासुक्कडा

णमोऽणाचेव ॥ एसगणो अणवरयं,
कायव्वोकुसलहेउत्ति ॥ १० ॥

अर्थः—अरिहंतादिक चार शरणनुं अंगीकार करवुं, दुष्कृतनी एटले हिंसादिक पापनी निंदा गर्हाकरवी, अने सुकृतनी अनुमोदना अने शुभ कार्यनी प्रसंसा निश्चे करवी. ए त्रण अधिकारनो गण मोक्षनो हेतु छे. एम विचारीने भव्य प्राणीउए निरंतर करवा योग्य छे. एटले चउसरण अंगीकार करवा योग्य छे दुष्कृतनी निंदा करवा योग्य छे अने सुकृतनी अनुमोदना करवा योग्य छे. ॥१०॥

हवे चउसरण गमण प्रथम अधिकार कहीएछीए

अरिहंत सिद्ध साहू, केवली कहीउ
सुहावहो धम्मो ॥ ए ए चउरो चउ
गइ, हरणा सरणं लहइ धन्नो ॥११॥

अर्थः—इंद्रादिकोए करेली पूजाने योग्य, सकळ कार्य सिद्ध कर्यां छे, नीपजाव्यां छे जेणे, साधु मोक्ष सुखना साधनहार. श्री केवळज्ञानीउए कहेला सुखनो आपणाहार एवो. वळी धर्म दुर्गति विषे पडता प्राणीउने धारवावाळो एटले राखवावाळो एवो ए अरिहंतादि चार ते चार गतिना हरवावाळा छे. पांचमी सिद्ध गतिमां पहोचाडवावाळा छे. ते कारणे अरिहंतादिक चार प्रत्ये शरणपणे लहेछे एटले पामेछे. अंगीकार करेछे, कोण अंगीकार करेछे ते कहेछे तोकेः—धन्य कृत्य पून्य प्राणी, होय ते. ॥ ११ ॥

प्रथम अरिहंत प्रत्ये शरण अंगीकार करतो छतो केवी मुद्रा धरेछे ते कहेछे.

अह सो जिणभत्ति भरुच्छ, रंत रोमंच
कंचुअ करालो ॥ पहरिस पणउ म्मीसं, सीसंमि कयंजली भणइ ॥ १२ ॥

अर्थः—हवेतिर्थंकरने विषे भक्ति तेनो समूह तेह थकी उदयने पाम्यो एटले विकस्वर थयो जे रोमराय कंचुक तेण करी कर्म शत्रुउने काळ, विकाळ एटले भयने उपजाववावाळो थयो हतो एवो वळी अति हर्ष थकी प्रणमीत तेणे आकुळ जेम होय तेम थयो हतो अथवा अति हर्ष थकी आनंदनां आंसु गद्गद् स्वर तेणे करी आकुळ जेम होय तेम थयो हतो एवो वळी मस्तकने विषे करीछे रचीछे अंजलि जेणे, एटले जोड्याछे बे हाथ जेणे एवो थयो हतो ते धन्य कृत्य पुन्य पुरुष साधु प्रमुख जणोछे. ते कहेछे. ॥१४॥

हवे अरिहंत शरण अंगीकार करतो हतो साधु प्रमुख पुरुष जे जणोछे ते दश गाथाए करी कहीए छीए.

राग दोसारीणं, हंता कम्मट्ठ गाइ अरिहंता ॥ विसय कसायारीणं,

अरिहंता हुं तुमे सरणं ॥ १३ ॥

अर्थः—राग द्वेष रुप वेरीयोना हणवावाळा, वळी ज्ञानादिक आठ कर्मनो अने आदि शब्द थी परिसह उपसर्ग ते रुप वेरी तेना हणवावाळा, वळी पांच विषय अने चार कषाय ते रुप वेरी तेना हणवावाळा, अथवा विषय कषायना शत्रुठे ने वचनना भूषण एवा जे अरिहंत ते मारे शरण रक्षानो करणहार थाउ ॥ १३ ॥

रायसिरि मवकमित्ता, तव चरण डुच्च रं अणुं चरित्ता ॥ केवल सिरि मरह ता, अरिहंता हुं तुमे सरणं ॥ १४ ॥

अर्थः—राजश्री प्रत्ये एटले राज्य लक्ष्मी प्रत्ये छांडीने सामान्य साधु दुःखे आचरी शके एवा तपनुं आचरण सेवी ते प्रत्ये आचरीने शेवीने केवळज्ञान रुप श्री लक्ष्मी तेने योग्य एवा जे अरिहंत ते मुजने शरणपणे थाउ.१४

थुइ वंदण मरहंता, अमरिंद नरिंद पूअ मरहंता ॥ सासय सुह मरहंता, अरिहंता हुं तुमे सरणं ॥ १५ ॥

अर्थः—स्तुति, स्तवन, गुणोत्कीर्त्तन, वंदण, नमस्कार तेने योग्य. वळी देवीन्द्र नरिंद्रोए करेली जे पूजा तेने योग्य वळी सास्वत सुख तेने योग्य एवा जे अरिहंत ते मुजने शरणपणे थाउ॥१५॥

परमण गयं मुणंता, जोइंद महिंद झाण मरहंता ॥ धम्म कहं अरहंता, अरिहता हुं तुमे शरणं ॥ १६ ॥

अर्थः—परना मनागत्य भाव ते प्रते जाणवा वाळा वळी योगिन्द्र महींन्द्राना ध्यान तेने योग एटले योगीन्द्र महींन्द्र ध्यान धरे छे जेनो वळी दानादिक चार प्रकारे धर्म कथा तेने योग्य एवा अरिहंत ते मुजने शरणपणे आधारपणे थाउ.।१६।

सव्व जिआण महिंसं, अरहंता सच्च
वयण मरहंता ॥ बंभव्वय मरहंता,
अरिहंता हुं तुमे सरणं ॥ १७ ॥

अर्थः—सर्व जीवोनी अहिंसा, दया, तेने योग्य, अने सत्य, निरवद्य, स्वपर हितकारी वचन तेने योग्य वळी ब्रह्मव्रत, अढार भेदे मैथुन, कुशीलनो त्यागरुप शीळव्रत तेने योग्य एवा जे अरिहंत ते मुजने शरण पणे थाउ. ॥ १७ ॥

उसरण मव सरित्ता, चउतीसं अइ
सइ निसेवित्ता ॥ धम्म कहंच कहंता,
अरिहंता हुं तुमे सरणं ॥ १८ ॥

अर्थः—समोशरण प्रत्ये शाचावीने एटले समोसरण मांहे वेसीने चोत्रीश अतिशय प्रत्ये सेवीने वळी दानादि चार प्रकार धर्म कथा प्रत्ये कहेता कहेता मोक्षे जाय. एवा जे अरिहंत ते मुजने शरणपणे थाउ. ॥ १८ ॥

ए गाइ गिराणेगे, संदेहे देहिणं
समंछित्ता ॥ तिहु अणमणुसासंता,
अरिहंता हुं तुमे सरणं ॥ १ए ॥

अर्थः—देहधारीउना एटले नव्य प्राणीउना अनेक जे संदेह, संशय ते प्रत्ये एक वाणीए करी समयकाळे एटले एकज वारे छेदीने, अथवा सम्यक् प्रकारे उछेदीने एटले दुर करीने त्रण भुवन प्रत्ये अनुसासना करता, एटले हितशिक्षा देता मोक्षे जायछे. एवाजे अरिहंत छे ते मुजने शरणपणे थाउ. ॥ १ए ॥

वयणा मएण भुवणं, निव्वा वंता
गुणेसु ठावंता ॥ जिअ लोए मुवरंता,
अरिहंता हुं तुमे सरणं ॥ २० ॥

अर्थः—वचन रूप अमृत तेणे करीने त्रण भुवन प्रत्ये एटले त्रण भुवनना नव्य जीवो प्रत्ये

ठारता एटले विषय कषायरूप अग्निथी निवारता अथवा एम कहीए के ठारीने एटले त्रण भुवन ना भव्य जीवोनी विषय कषायरूप अग्निप्रत्ये होलवीने सम्यक् ज्ञानादि गुणोने विषे स्थापता स्थापीने जीव लोक प्रत्ये एटले भव्य जीवो प्रत्ये संसार रुप कूप थकी उध्धरता काढता अथवा उ ध्धरीने काढीने जे मोक्षे जायछे एवा जे अरिहंत ते मुजने शरणपणे थाओ ॥ २० ॥

अच्चब्भूअ गुणवंते, निअजस ससिहर पयासिअ दिअंते ॥ निअय मणाइ अणंते, पडिवन्नो सरण मरिहंते ॥२१॥

अर्थः—अति अद्भूत गुणोवाळा पोताना यश रुप चंद्रमाए करीने प्रकाशित कर्यो छे एटले प्र काशवंत उजळो कर्यो छे दिशानो अंत जेणे, एटले सर्व लोकमां जेनो यशरुप चंद्रमा उद्योत करेछे निश्चय. नथी आदि नथी अंत जेना. माहा विदेह

क्षेत्रनी अपेक्षाए अरिहंत पद सदा पामीये एवा अरिहंतो प्रत्ये शरणपणे हुं पामेलोछुं ॥२१॥

उज्जिय जर मरणाणं, सम्मत्त दुरकत्त-
सत्तसरणांण ॥ तिहुअण जण सुहयाणं,
अरिहंताणं नमोत्ताणं ॥ २२ ॥

अर्थः-ते अरिहंतो प्रणी नमस्कार थाउ, केवा ते अरिहंत तोकेः-दुर कर्यो छे जरा मरणजेणे वळी ते अरिहंत केवा छे तोकेः-समस्त दुखोए करी अति पीमित एवा सत्व प्राणीउ तेने जे शरण छे आधारन्नूत छे वळी केवा ते अरिहंततोके त्रण भूवनना लोकने जे सुखदायक छे ते अरिहंत प्रणी मारो नमस्कार थाउ. ॥ २२ ॥

हवे सिद्धनुं सिद्ध शरण स्वरुप कहे छे.

अरिहंत सरण मल सुद्धि, लद्ध सुवि
सुद्ध सिद्ध वहुमाणो ॥ पणय सिर रइ-
अकर कमल,सेहरो सहरि संन्नणइ२३।

अर्थः—अरिहंत शरण करवे करीने थइ जे कर्म मलनी शुद्धि तेणे करी लाध्यो छे (पाम्यो छे) अति निर्मळ सिद्धो प्रते बहुमान अंतरंग प्रेम जेने, एटले सिद्धोना गुण गावाने मन थयुंछे जेनुं एवो छतो प्रणीत शिरने विषे नमेलो मस्तक तेने विषे रच्योछे हस्त कमळरुप शिखर मुगट जेणे, एवो छतो हर्ष सहित ते कहे छे. ॥२३॥

हवे छ गाथाए करी सिद्ध शरण कथन कहे छे.

कम्मठ खय सिद्धा, साहाविअनाण दंसण समिद्धा ॥ सव्वठ लद्धि सिद्धा ते सिद्धा हुं तुमे सरणं ॥ २४ ॥

अर्थः—ज्ञानावरणादिक अष्ट करमना क्षय थकी जे प्रसिद्ध छे तथा स्वाभाविक केवळज्ञान केवळ दर्शन, तेणे करी जे समृद्धछे, वृद्धि पामेला छे, सिद्ध थयाछे. सर्व अर्थनी लब्धिन्न प्राप्तिन्न जेने, अथवा सर्व अर्थनी लब्धिन्नए करी जे कृत्याकृत्य थया छे

ह्या जे सिद्ध छे ते सिद्ध भगवंत मुजने शरणपणे थाउ. ॥ २४ ॥

तिअलोगमथ्थयथ्था, परम पयथ्था
अचिंत सामथ्था ॥ मंगल सिद्ध पयथ्था,
सिद्धासरणं सुह पसथ्था ॥ २५ ॥

अर्थः—त्रण लोकना मस्तकने विषे जे रह्या छे वळी परम पद मुक्ति पद एने विषे जे रह्याछे वळी अचिंत् सामर्थ्य छे जेने विषे एटले विचारमां नहीं आवे एवी शक्ति छे जेने विषे, एटले अनंत शक्तिना जे धारणहारछे, वळी मंगळरुप, कल्याण रुप, एवा जे सिद्ध पद छे तेने विषे जे रह्या छे. वळी शाश्वत सुखे करीने जे प्रसस्त छे रुडा छे एवा जे सिद्धछे ते मुजने शरण पणे थाउ. ॥२५॥

मूल खय पडिवख्खा, असूढ लख्खा
सजोगि पच्चख्खा॥ साहाविअत्त सुख्खा,
सिद्धा सरण परम मुख्खा ॥ २६ ॥

अर्थः-मूळथी उखेड्योछे प्रतिपक्ष कर्मशत्रु जेणे. वळी ससारना मूळ मिथ्यात् अविरति,कषायादिक छे तेनो क्षय करवाने विषे जे वेरी छे, वळी मूढपणा रहित लक्ष छे स्वरुप छे जेनो, संयोगीउने जे प्रत्यक्ष छे एटले केवळज्ञानीउने जे दृष्टिगोचर छे वळी स्वन्नाविक पाम्यो छे सुख जेणे, जे उत्कृष्ट मोक्ष थयाछे श्राठे कर्मथी जे मुकाणा छे एवा जे सिद्ध छे ते मुजने शरणपणे थाउ. ॥ २६ ॥

पडिपिल्लिअ पडिणीआ, सम्मग्ग झाणग्गि दड्ढ भव वीया ॥ जोइ सरसरणीया, सिद्धा सरणं समरणीआ॥२७॥

अर्थः-प्रति पेल्याछे दूर कर्याछे प्रतनिक कर्मशत्रु जेणे. वळी समग्र ध्यान अग्निए करी, एटले शुक्ल ध्यान रुप अग्नि तेणे करी दग्ध कर्यो व नस्म कर्योछे न्नवनो बीज संसारनो बीज मो

एवा जे सिद्ध छे ते सिद्ध भगवंत मुजने शरणपणे थाउ. ॥ २४ ॥

तिअलोयमत्थयत्था, परम पयत्था
अचिंत सामत्था ॥ मंगल सिद्ध पयत्था,
सिद्धासरणं सुह पसत्था ॥ २५ ॥

अर्थः—त्रण लोकना मस्तकने विषे जे रह्या छे वळी परम पद मुक्ति पद एने विषे जे रह्याछे वळी अचिंत् सामर्थ्य छे जेने विषे एटले विचारमां नहीं आवे एवी शक्ति छे जेने विषे, एटले अनंत शक्तिना जे धारणहारछे, वळी मंगळरुप, कल्याण रुप, एवा जे सिद्ध पद छे तेने विषे जे रह्या छे. वळी शाश्वत सुखे करीने जे प्रसस्त छे रुडा छे एवा जे सिद्धछे ते मुजने शरण पणे थाउ. ॥२५॥

मूल खय पडिवख्खा, अमूढ लख्खा
सजोगि पच्चख्खा॥ साहाविअत्त सुख्खा:
सिद्धा सरण परम मुख्खा ॥ २६ ॥

हादिक जेणे, वळी योगीश्वर गणधरादिक तथ
छद्मस्थ तिर्थंकर तेने स्मरणीय छे, ध्यावा योग
छे. सर्व भव्य प्राणीउने स्मरवा योग्य छे. आ
घवा योग्यछे. एवा जे सिद्ध छे ते मुजने शरण
पणे थाउ. ॥ १७ ॥

पाविअ परमाणंदा, गुण नीसंदा वि
दिन्न भव कंदा ॥ लहुइ कय रवि चं
दा, सिद्धा सरणं खविअ दंदा ॥१८॥

अर्थः—पमाड्यो छे जीवने परम आनन्द उ
त्कृष्ट सुख जेणे, अथवा पाम्यो छे परमआनंद जेणे
वळी सम्यक् ज्ञान दर्शनादिक गुणोनो जे सारभू
त छे अथवा गुण छे सार प्रधान जेने विषे वळी
विदार्यो छे छेद्यो छे संसारनो मूळ राग द्वेष मि
थ्यात्व मोह जेणे, वळी लघु कर्या छे एटले नाना
कर्या छे सूर्य चंद्रमा जेणे, सूर्य चंद्र तो मित क्षेत्र
प्रकाशित छे अने सिद्ध तो लोकालोक प्रकाशी छे

वळी खपाव्यो छे द्वंद संग्रामादिक जेणे एवा जे सिद्ध छे ते मुजने शरणपणे थाउ. ॥ २८ ॥

उवलद्ध परम बंभा, दुल्लह लंभावि
मुक्क सारंभा ॥ भूवण घर धरण खं
भा, सिद्धा सरणं निरारंभा ॥ २९ ॥

अर्थः—आध्यो छे उत्कृष्ट ज्ञान जेणे दुर्लभ जे मोक्ष तेनो, लाभ थयोछे जेहने त्रण भुवन रुप घर प्रत्ये धारवाने जे स्थंभ समान छे एटले सिध्ध परमात्मा त्रण भुवनना लोकने आधार छे जे प्राणी सिध्ध परत्माने ध्यावे ते दुर्गति मांही न पड वळी सिद्ध केवा छे—छ जीवनी कायादिक ना आरंभ थकी जे निकळ्या छे एवा जे सिध्ध छे ते मुजने शरणपणे थाउ. ॥ २९ ॥

सिद्ध सरणेण नय बंभ हेउं, साहुगुण
जणिअ अणुराउ ॥ मेअणि मिलंत सु
पसउ, मउउ तन्निमं भणइ ॥ ३० ॥

नवपूर्वना धणी, द्वादशांगीना धणी. एकादस अंगना धणी. जे साधु छे वळी जिनकल्पी साधु यथालंदी साधु अने परिहारविशुद्धि चारित्रना धणी साधु जिनमारगमां होय ते सर्वे साधु मुजने शरणभणी थाउ ॥ ३३ ॥

खीरासव महु आसव, संभिन्नस्सो अकुठ वुद्धीअ ॥ चारण वेउव्विय पयाणुं, सारिणो साहुणो सरणं ॥ ३४ ॥

अर्थः—खीराश्रव लब्धिना धणी, मध्वासर लब्धिना धणी, संभिन्नस्रुत लब्धिना धणी, कोष्टबुद्धि लब्धिना धणी, वळी विद्याचारण साधु, जंघाचारण साधु, विक्रियलब्धिना धणी, पदानुसारि लब्धिना धणी एवा. जे साधु छे ते मुजने शरण भणी थाउ ॥ ३४ ॥

उज्झिअ वयर विरोहा, निच्चम दोहा पसंत मुह सोहा ॥ अभिमय गुण संदो

हा, हय मोहा साहुणो सरणं ॥३५॥

अर्थः—वर विरोध थकी जे रहित छे वळी नित्यद्रोह थकी एटले विश्वासघात थकी जे रहित छे वळी प्रसन्नमुखे करीने जे शोभायमान छे वळी अभिमत्त सत्पुरुषोए मानेला एवा वळी सम्यक् ज्ञानादिक गुणना ज समूह छे वळी हण्यो छे मोह अज्ञान जेणे एवा जे साधु छे ते मुजने शरणपणे थाउ ॥ ३५ ॥

खंडिअ सिणेह दामा, अकाम धामा निकाम सुह कामा ॥ सुपुरिस मणाभि रामा, आया रामा मुणी सरणं ॥३६॥

अर्थः—छांड्यो छे तोडी नांख्यो छे. पुत्र कलत्र शरीरादिकनो स्नेहराग रुप दोरडो जेणे, वळी नथी काम विषयाभिलाष अने धाम घर जेहने निष्कामे निरवकार सुखना वंछवावाळा, वळी आचार्यादिक सत्पुरुषोना मनने आनंदना उ

सयंभू रुपन्ना ॥ अजरामर पहखुन्ना,
साहू सरणं सुकय पुन्ना ॥ ३८ ॥

अर्थः—हिंसादिक दोषो थकी जे शून्य छे रहित छे. वळी सर्वे जीवने विषे कर्यो छे करुणा भाव जेने, वळी स्वयंमेव (पोतानी मेळे) प्रगट्यो छे सम्यक्त प्रज्ञाबुद्धि सम्यकबुद्धि ज्ञान जेने, अथवा स्वयंभूरमणनी पेरे विस्तारवंत छे. रुवप्रज्ञा एटले सम्यक्दर्शन ज्ञान जेनो अथवा पोतानी मेळे प्रगट्यो जे क्षायक सम्यक्त तेणे करीन पूरण छे भरेलो छे अथवा पोतानी मेळेज भरण पोषण करवावाळा उत्पन्न थया छे, प्रगट थयाछे वळी अजरामरनो पंथ एटले मोक्षनो मारग जिनागम तेने विषे जे निपूण छे वळी अभ्यासना करवावाला छे. वळी भलो कर्यो छे मुक्तिने योग्य ते पुण्य जेने, वळी पवित्र छे आत्मा जेनो एवा जे साधु ते मुजने शरणापणे थाउ. ॥ ३८ ॥

त्यादिक साधुनु स्वरुप तेने विषे सुस्थित छे अ तिशय करी रह्यो छे जे कारण माटे आचार्यादि क पांच आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणावच्छेद ए आचार्यादिक पांच पूर्वोक्त साधुना स्वरुप मांहे रहेला छे ते आचार्यादिक पांच साधु कहीए. साधु नणवे करीने में ग्रहण कीधा, त्र ण काळना साधु ते कारण माटे ते त्रणे काळना साधु मुजने शरणपणे थाउ. ॥ ४० ॥

हवे धर्मशरण कहीए छीए.

पडिवन्न साहू सरणो, सरणं काउं पूणो वि जिण धम्मं ॥ पहरिस रोमंच पवं च, कंचुअं चिअ तणु भणइ ॥ ४१ ॥

अर्थः—अंगीकार कर्यो छे साधुनो शरण जे ने एवो थयो छे तो वळी पण जिनधर्म प्रत्ये शर णपणे करवाने इच्छतो थको अतिशय हर्षना व श थकी थयो जे रोमांच रोमकूपनो प्रपंच वि

अर्थः—जे जिनधर्म पामवे करीने अथवा
पामवे करीने पण मनुष्य संबंधि देवता संबं
सुख जीव पामे विशेष मोक्ष सुख तो ना
जिनधर्म पामवे करीनेज होय. एवो जे जैनध
ते मुजने शरणपणे थाउ. ॥ ४३ ॥

निद्दलीअ कलुस कम्मो, कय सुहज
म्मो खलीय कय अहम्मो ॥ पमुह परि
णाम रम्मो, शरणं मे होउं जिणधम्मो ४

अर्थः—दळी नांख्यो छे विदार्यो छे कलु
मलीन कर्म जेणे. वळी कीधो छे शुभ जन्म
ने वळी उन्मूल्यो छे अधर्म पाप जेने जेम श
ने नग्रादिकथी काढीए तेनी पेरे. वळी ध
करवानी आदिने विषे धर्मनुं फळ उदय आवे
समये जे सुंदर सुखदायक छे, एवो जे धर्म
ते मुजने शरणपणे थाउ. ॥ ४४ ॥

कालत्तएवि नमयं, जम्मण जरा मरण

वाहि सय समयं ॥ अमयंच बहु मयं जिण मयंच शरणं पवन्नोहं ॥ ४५ ॥

अर्थः--त्रण कालने विषे जे अमर छे एटले सर्व काळे जिनधर्म महाविदेह क्षेत्रनी अपेक्षाए पामीए वळी जन्म जरा मरण व्याधिजना संक होने उपशमाववाहार निवारणहार छे जे. व ळी अमृत समान छे. तिर्थंकर गणधरादिक घणा श्रेष्ठ लोकोए मानेलो छे, एवो जे जिनमत ते. सुतधर्म चारित्रधर्म बे प्रकारे धर्म ते प्रते शरण पणे हुं पाम्यो छुं. ॥ ४५ ॥

पसमिअ काम पमोहं, दिठ्ठ दिठेसु न कलीअ विरोहं ॥ शिव सुह फलयम मोहं, धम्मं शरणं पवन्नोहं ॥ ४६ ॥

अर्थः--अतिशे करीने शमाव्यो छे, टाळयोछे कामनो अति मोह उन्माद जेने. वळी दृष्टिए दी गमां आवे ते बादर एकेंद्रिया आदे दइ अने

दीठामां न आवे ते सूक्ष्म पांच स्थावरादिक अथवा दिठा ते रुपी पदार्थ पुद्गल स्कंध. अने न दीठा ते धर्मास्ति कायादिक पदार्थने विषे नथी पाम्यो विपरीतपणादि विरोध जेणे स्याद्वाद जिनमत छे माटे. कोइ पदार्थने विषे विराध आववा न दिये वळी केवो छे शिवसुख फलनो देणहार छे फळनो आपणहार छे एवो जे जिनधर्म ते प्रते शरणपणा हु पाम्यो छुं. ॥ ४६ ॥

नरय गइ गमण रोहं, गुण संदोहं पवाइ निरकोहं ॥ निहणिअ वम्हह जोहं, धम्मं शरणं पवन्नोहं ॥ ४७ ॥

अर्थः—नरकगतिने विषे गमण करतां रोकवा वाळो छे तथा क्षमादिक गुणोनो जे समूह छ वळी एकांतवादीउ मिथ्यादृष्टि लोको थकी गयो छे क्षोभ भय जेनो. वळी त्रास रहित छे अकंप छे एवो. वळी अतिशये करी हण्या छे मार्या

ते मन्मथ कामदेव रुप योद्धा सुभट जेणे एवो जे जिनधर्म ते प्रते हुं शरणपणे पाम्यो छुं. ॥७

भासुर सुवन्न सुंदर, रयणालंकार गारव महग्घं ॥ निहिमिव दोगच्चहरं, धम्मं जिणदेसिअं वंदे ॥ ४८ ॥

अर्थः—नीहीमीव के० निधान समान एवो वळी जिनराजनो देखाडेलो एवो जेधर्म सूतधर्म चारित्र धर्म ते प्रते हुं वांदुछुंः-ते धर्म निधान-भासुर के०के वळ ज्ञाने करीने देदीप्यमान छे. वळी ते धर्म नीधान केवोछे तो केः—सुवन्न के० अक्षर तेनी जे रचना पद गाथा आलोवा बंधे करी सहित. एवो आत्म स्वरुपे करी मनोहर छे.वळी ते धर्म नीधान केवो छे रयणालंकार गारव कहेतां ज्ञान दर्शन चारित्र रुप रत्नालंकारोनी शोभाए करीने महगां के०बहु मुलो छे. एटले अमुल्य छे. ए सर्वे उपमा ए करीने सहित एवो निहिमीव के० जे नीधान

(धम) ७ त धर्म नीधाने करीने दुःखहरं के० दलदल मिथ्यात, अज्ञान, अशुन कर्म, नरकादि अशुन्न गति, संकल्प, विकल्पादिक आदे दइ ने अनेक दलदरने हरवावालो दुर करवावालो एवो जे धर्म नीधान ते मुजने शरण नणी थाज. ४७

नावार्थः—हृदय रुप चक्षुने विषे प्रवचनरुप अंजन जो सद् गुरु करेतो स्वस्वरुप परम नीधान देखे एटले स्वस्वनावे पोताना स्वरुप प्रते प्रगट जाणे. वली ते नीधान केवो छे ताक केवल ज्ञाने करी नास्कर देदीप्यमान छे. वली केवल ज्ञानीजए हेय ज्ञय उपादेय अक्षरोए प्ररुप्यो छे. वली आत्मस्वरुपे करी मनोहर छे. वली रत्नत्रयी गुणरुप हार, मुगट कुंडले करी शोनायमान छे. वली अनंत चतुष्टये करी अमुख्य छे. इत्यादि उपमाए करी सहित जे धर्म नीधान ते सर्वे मिथ्यात. अव्रत. कषाय. जोग. अशुद्ध संकल्प

विकल्प विभाव दशादिक जे दुःख दलदरपणुं तेने नाश करे, एवो जे धर्म नीधान ते मुजने शरण भणी—आधार भणी थाओ. ॥ ४८ ॥

चउ चरण गमण संचिअ, सुचरिय रोमंच अंचिय शरीरो ॥ कय दुक्कड गरिहा असुह, कम्मखय कंखिरो भणइ ॥ ४९ ॥

अर्थः—चार शरण अंगिकार करवे करीने संच्यो एकठो कीधो जे सुचरित्त पुन्य तेणे करीने सोभायमान छे शरीर जेनो एवो छतो वळी भाव परभव कीधुं जे पाप ते पापनी गर्हा निंदा तेणे करी अशुभ कर्मनो क्षय करवाने विषे अभिलाषवंत थयो छतो साधु प्रमुख ते धन्य पुरुष कहेछे. ॥ ४९ ॥

इह भविअ मन्न भविअं, मिच्छत्त पवत्तणं जमहि गरणं ॥ जिण पवयण पडिकुठं दुठं गरिहामि तं पावं ॥ ५० ॥

अर्थः—आ भव संबंधी अन्य भव संबंधी एटले अतीत अनागत वर्त्तमान काळने विषे कीधुं जे पाप वळी मिथ्यात्वनुं प्रवर्त्तावदुं कुतिर्थिकने दान सन्मानादिक देवुं तेनीज पूजनादिकनुं करवुं तथा मिथ्यात्वना स्थापेला जे पर्व तेनुं जे करवुं करावदुं ते रुप कीधुं जे पाप वळी जे पापना अधिकरण निपजाव्यां होय कोइने आपाव्या होय घंटी, मुसल, खखली, सावरणी, चुला, कोलु, घाणी, हल, इत्यादि यंत्र तथा धनुष, खड्ग, भालादिक शस्त्र ते पाप अधिकरण निपजाववा आपवा अपाववा थकी थयो जे पाप वली जिनराजना वचनने विषे जे कार्य निषेध्यो ते कार्यनुं करवुं ते रुप कीधुं जे पाप दुष्ट अति मलीन परिणाम रुप माटे एवो कीधो जे पाप ते पाप हुं निश्चे आत्मसाखे गुरु आदेनी साखे निंदुछुं

मिच्छत्त तमं धेणं, अरिहंताइसुअ व

ञ्न वयणिजं ॥ अन्नाणेण विरइअं,
एहिं गिरिहामि तं पावं ॥ ५१ ॥

अर्थः—जिनधर्मथी जे विपरीत एटले मिथ्या तरुप तमे करीने अंधकारे करीने थएलो हुं आं धळो तेणे अज्ञान पणे करीने अरिहंत सिद्ध आ चार्य, उपाध्यायादिकने विषे जे आवरणवाद निं दानां वचन कह्यां होय ते पाप प्रते हवणां हुं निंदुं छुं ॥ ५१ ॥

सुअ धम्म संघ साहुसु, पावं पडिणीअ
याइ जं रइअं ॥ अन्नेसुअ पावेसुय,
इहं गिरिहामि तं पावं ॥ ५२ ॥

अर्थःप्रतनिकताए करीने द्वेषपणे करीने सूत सिद्धंत धर्मक्षमादि संघ जिनआज्ञा संयुक्त साधु मोक्ष मारगनो साधक एटलाने विषे जे आसा तना रुप पाप कर्यां होय वळी प्रणातिपातादि- क अन्य पापमांही जे कोइ पाप कीधुं होय ते पाप

पते हमणां हुं निंदुंहुं ॥ ५१ ॥

अन्नेसुअ जीवेसुअ, मित्ति करुणाइ गोअरे सुकयं ॥ परिआ वणाइ डुक्खं, इहं गिरिहामि तं पावं ॥ ५२ ॥

अर्थः—मैत्री करुणादिक भावनाने आधारे जे छे एवा अरिहंतादिक टाळी अनेरा जीव तेने विषे परितापनादिक डुःख एटले अभिहतादिक दस प्रकारे डुःख कर्युं होय तेथी उपजे पाप ते पापने हमणां हुं निंदु हुं ॥ ५२ ॥

जं मणवए काएहिं, कय कारिय अणु मइहिं आयरियं, धम्म विरुद्ध मशुद्धं, सव्वं गिरिहामि तं पावं ॥ ५४ ॥

अर्थः—मन वचन कायाए करीने कृत पोते करवे करीने बीजा पासे करावे करीने कर्त्ताने भ-लुं जाणवे करीने अशुद्द कर्म मलसहित एवुं जिनधर्मथी विरुद्ध विपरीत कार्य जे आचर्युं होय

सेव्युं होय ए रुप जे पाप ते सर्व पाप प्रत्ये हुं निंडुं हुं अरिहंतादिकनी साखे. ए पाप निंदारुप बीजो अधिकार कह्यो. ॥ ५४ ॥

अहसो डुक्कड गरिहा, दलि उक्कड डुक्कडो प्फूडं नणइ ॥ सुकडाणु राय सुमुइन्न, पुन्न पुलयं कूर कराले ॥ ५५ ॥

अर्थः—हवे पापनी गर्हा निंदा करवे करी ने चूरण कर्यो छे नत्कट आकरा डुःकृत पाप जेणे एवो थयो छतो वळी सुकृतने विषे अनुराग करवे करी नदयने पाम्यो जे पवित्र रोम राय तेणे करीने जे सहित छे अथवा कर्म शत्रुन प्रत्य हणवाने जे विकाळ थयोछे एटले शूरवीर थयो छे एवो ते साधु प्रमुख धन्य पुरुष प्रगट जिम छे तेम कहेछे. ॥ ५५ ॥

अरिहंत अरिहंतेसु, जं च सिद्धत्तणं च सिद्देसु ॥ आयारं आयरिए,

ज्वज्झाय तं उवज्झाए ॥ ५६ ॥

अर्थः—अरिहंतने विषे तिर्थंकरोने विषे, अरिहंतपणुं तिर्थंकरपणुं छे ते प्रत्ये वळी जे द्धोने विषे सिद्धपणो छे ते प्रते वळी आचाय विषे जे ज्ञानादिक पंच विध आचार छे ते वळी उपाध्यायने विषे जे उपाध्यायपणो छे ते हुं अनुबोधु हुं प्रशंसुछुं. ॥ ५६ ॥

साहूण साहु चरिअं, देस विरयंच सा
वय जणाणं ॥ अणुमन्ने सव्वेसिं,
सम्मत्तं सम्मदिठीणं ॥ ५७ ॥

अर्थः—वळी साधुउने विषे महा मुनी विषे जे साधुचर्या एटले साधुने आचरवा यो ते प्रते. वळी श्रावक लोकोने विषे देशविरति छे समकीत मूळ पंच अनुव्रत त्रण गुण व्रत, र शिक्षाव्रत अगीयार पडिमादिक देसविरतिप छे ते प्रते. वळी सम्यक्दृष्टिउने विषे जे जी

..:—नित्य सदा शुभ परिणामवंत एटले शुभ आत्म अध्यवसायवंत एवो चउसरण गमणादिक प्रते आचरतो अंगीकार करतो छता साधु प्रमुख जीव कुशळ प्रकृतीउ प्रते एटले बेतालीस पुन्य प्रकृतिउ प्रते वांधे वांधी जे शुभ प्रकृतिउ ते शुभ अनुबंधवाली थाय. एटले परभवे शुभफलनी देनारी थाय. ॥ ५९ ॥

मंदाणु भावा बद्धा, तिव्वणु भावाउ कुणइ ताचेव ॥ असुहाउ निराणुं बधाउ, कुणइ तिव्वाउ मंदाउ ॥ ६० ॥

अर्थः—मंद अनुभाव थकी एटले थोडे शुभ रसे करी बांधेली जे प्रकृतिउ ते प्रते तिव्र अनुभाववालीउ एटले घणा शुभ रसवालीउ एवी प्रकृतिउ करे निश्चे वली अशुभ पाप प्रकृतिउ जे छे ते प्रकृतिउ प्रते निराणुबंधा एटले निराणुबंध कर, एटले परभवे अशुभ फल दुःख फल आप

रनो गण करवा योग्य छे. ते चतुर शरणादिक ग
ए केवो छे तो केः—स्वर्ग मोक्ष रुप सुगति फल
छे जेहथी तत्वना जाण जे पुरुष छे ते चउशर
णादिक प्रते एक मोक्षसुखने अर्थे अंगीकार क
रेछे, पण पुद्गलिक सुखने अर्थे अंगीकार करता
नथी, जेम कर्षणी लोक धान्यने अर्थे उद्यम करे
छे पण परालने अर्थे उद्यम करता नथी. ॥६१॥

चउ रंगो जिण धम्मो, नकउ चउरंग
सरणमविन कयं ॥ चउरंग भव छेउ,
नकउ हाहारिउ जम्मो ॥ ६२ ॥

अर्थः—चार अंग छे जेहनां दान, शील, तप,
भाव ते भाव रुप जिनधर्म छे ते जिनधर्म जे
जीवे न कर्यो वली अरिहंत सिद्ध साहु धर्म ए
चार अंग रुप शरण पण न कीधुं वली देव
मनुष्य नारकी तिर्यंच ए चार अंग रुप भव सं
सार तेनो उच्छेद जेणे न कर्यो ते जीव अति कष्टे

करीने पामेलो मनुष्य जन्म हार्यो ! इति खेदे ! मनुष्य जन्म डुर्लभ ठे ते माटे. ६१

इय जीव पमाय महावीरं, नद्दं तमेव
मञ्झयणं ॥ झाएसुति संझम वंझ,
कारणं निव्वुइ सुहाणं ॥ ६३ ॥

अर्थः—ए प्रकारे हे जीव ! ए चउशरण अध्ययन प्रत्ये त्रण संध्याने विषे तुं स्मर. ते अध्ययन केवो ठे तो केः—प्रमाद रुप मोटा अरि वैरी प्रते मारवाने जे वीर ठे. माहा सुन्नट छे वली ते अध्ययन केवुं ठे भद्र छे एटले मोक्ष छे अंते जे इथी, वली ते अध्ययन केवुं ठे निवृत्ति सुखनुं एटले मोक्ष सुखनुं अवंध्य कारण ठे, एटले सफल कारण छे. ॥ ६३ ॥

॥ इति चउशरण समाप्त ॥

चउसरणनुं शुद्धिपत्रक.

पृष्ठ	लिटी	शुद्ध	अशुद्ध
१	७	अर्थ	अथ
४	३	दंसण	दसण
४	१०	दर्शनाचारनी	दशनाचारनी
५	५	रीने	रीन
६	११	ने	न
७	१०	मते	मत
१२	३	तणे	तण
१२	०	स्तकने	स्तकन
१४	७	शरणपणें	शरणपण
१४	११	मनोगत्य	मनागत्य
१५	१२	शोभावीने	शाभावीने
१९	१	करवे	वरवे
२१	४	संसारना	ससारना
२२	१४	सूर्य	सर्य
२५	१०	से	स
२७	२	घेर	घर
३५	८	शरणपणे	शरणपण
३७	२	दृढादर	दृढदर

पृष्ट.	लीटी.	शुद्ध.	असुद्ध.
९१	१३	सोधंत	शोधंत
९२	९	तन	तेने
९२	१६	तुंकिमवेसुरेरे	तुकिमरेवेसु
९६	२	ध्वातमर्थ	ध्वातर्थ
९८	६	काळना	लोकना
९८	९	सुख	मुख
९९	२	ध्येयथी	ध्ययथी
९९	१२	खप	खय
११०	४	प्रवर्त्तावनावाळा	प्रवर्त्तावनाळा
११०	१६	जंबू	जंत्र
११६	६	किंचित्	किंचिमत्
११६	१३	पण	ए
११७	१७	चाली	चाला
१४१	११	दीधो	दीथो
१४८	५	तृपा	तृष्णा
१४९	६	धर्म	धर्मे
१६१	२	देवे	देवे
१७६	१८	होय	हाय
१८५	१२	होइ	हाइ
१८८	६	अनंत	थनंत
१९०	१४	भेख	भेखे

———

चउसरणनुं शुद्धिपत्रक.

पृष्ठ	लिटी	शुद्ध	अशुद्ध
१	७	अर्थ	अथ
४	३	दंसण	दसण
५	१०	दर्शनाचारनी	दशनाचारनी
६	५	रीने	रीन
६	११	ते	त
७	१०	मते	मत
१२	३	तणे	तण
१२	९	स्तकने	स्तकन
१४	७	शरणपणे	शरणपण
१५	११	मनोगत्य	मनागत्य
१६	१२	शोभावीने	शाभावीने
१९	१	करवे	चरवे
१	३	संसारना	ससारना
२	१४	सूर्य	सर्य
६	१०	ते	त
२७	२	वैर	वर
३५	८	शरणपणे	शरणपण
३७	२	दलदर	दलदल

पृष्ठ	लिटी	शुद्ध	अशुद्ध
३७	ए	तोके	ताक
३७	११	ज्ञेय	ज्ञय
३८	४	सरण	चरण
४०	६	अवरणवाद	आवरणवाद
४२	११	प्रत्ये	प्रत्य
४३	१६	जे	ज
४४	७	व	b
४६	ए	सं	स
४६	१३	विषे	विप
४८	१	हा शतिखेदे !	शतिखेदे !
४ए	९	सुरवीर	वोर